



# तार सप्तक

सकलनकर्ता और सम्पादक  
'अज्ञेय'

● लखनऊ

भारत सरकार के अधीन भारतभूषण अग्रवाल  
 लखनऊ में गिरिजादत्त शर्मा नामक नाम  
 प्रथम ( १९४३ )

● दूसरा संस्करण

भारत सरकार के अधीन भारतभूषण अग्रवाल नामक नाम  
 लखनऊ में गिरिजादत्त शर्मा नामक नाम  
 प्रथम ( १९५१ )

● तीसरा संस्करण

भारत सरकार के अधीन भारतभूषण अग्रवाल नामक नाम  
 लखनऊ में गिरिजादत्त शर्मा नामक नाम  
 प्रथम ( १९५० )

# तार सप्तक

गजानन माधव मुक्तिबोध  
नेमिचन्द्र जैन  
भारतभूषण अग्रवाल  
प्रभाकर माचवे  
गिरिजाकुमार माथुर  
रामविलास शर्मा  
अज्ञेय'



सकलनकर्ता एव सम्पादक  
'अज्ञेय'



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

मानपीठ लोकोदय ग्रंथमाला ग्रंथक - २२९

एकदशम स्कन्ध का निर्यासक

छद्मनामधेय जैन



बन्धी राइट १९६९

मकलिन कविथ तथा मन्थानकका भारसे

भारतीय दानर १ रा सुरधित

Lokodaya Series Title No - 0

TAAR SAPTAI

( Poems )

Edited & Compiled By

AJNLYA

Bharatiya Jnanpith

Publication

Secaled in 1968

Price Rs 8 00



मन्थानक काव्य उ

रकारण

मान दायनय

१, बन्धी राइट धन कलकत्ता-३०

रकारण कर्णनय

दुर्गाधर मय कालमी ६

विजयनर

१९६९ २१ नरक रूप व मन निष्ठा ६

निष्ठा मन्थानक १०६

मन्थानक

मन्थानक काव्य उ

मन्थानक काव्य उ



## परिदृष्टि प्रतिदृष्टि

[ दूसरे सस्करणका भूमिका ]

'तार सप्तक' का प्रकाशन सन् १९४३ में हुआ था। दूसरे सस्करणका यह भूमिका सन् १९६३ में लिखा जा रहा है। यास वषका एक पीढ़ी मानी जाती है। वयमत्र याता क अनिवाय नियमक अधीन सप्तक' के सहयोगी जा १९४२ क प्रयोगी थ, सन् १९६३ के स-दम हा गय है। दिक्काल जावीकी इसे नियति मानकर ग्रहण करना चाहिण, पर प्रयाग शाल कविक उनियादी पैतरमें हा कुछ पमा बात वा कि अपन को इस नय रूपम स्वाकार करना उसक लिण कठिन हो। घूट सभा होत है लकिन बुढापा किसपर कमा बडता है यह इसपर निमर रहता ह कि उसका अपन जाउनस, अपन अतात आर वतमानस ( आर अपन भविष्यस भा क्यों नहीं ? ) कैमा सम्य-ध रहता ह। हमारा धारणा ह कि तार सप्तक न तिन विविध नया प्रवृत्तियोंको सकतित किया था उनम एक यह भा रहा कि कविका युग सम्य-ध सदाक लिण उद-ग गया था। इस घातका ठाक पम हा सय कवियोंन सधत रूपम अनुभव किया था, यह कहना झूठ होगा यतिक अधिक सम्भव यहा ह कि एक स्पष्ट, सुचिन्तित विचारक रूपम यह बात किसी मा कविक सामन न आया हा। लकिन इतना अमदिग्ध ह कि समा कत्रि अपनका अपन समयस एक नय ढंगस बाँध रह थ। 'उत्पत्स्यत तु मम काऽपि समानधमा वाला पतरा न किसा कविक लिण सम्भव रहा था न किसाका स्वीकार्य था। समा सयम पहल समानतावा मानव प्राणी थ आर समानधर्मा' का अर्थ उनके लिण 'कत्रि धर्मा स पहल मानव धमा था। यह भद् किया जा सकता ह कि कुछक लिण आधुनिक धर्मा हानहा आग्रह पहले था और अगना मानव

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रंथमाला प्रकाशक-२२५

सम्पादक एन. निजामक

कहमाथ द्व. जैन

●

पॉपी राइट १९६६

सकलिन कविया तथा सम्पादका भारते

भारतीय ज्ञानपीठ-गारा सुरचित

Lokodaya Series Title No 26

TAAR SAPTAH

( Poems )

Edited & Compiled By

AJNLYA

Bharatiya Jnanpith

Publication

Second Edition 1966

Price Rs 8 00

©

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रकाशन

प्रधान कार्यालय

६, अच्युत राव प्लम बलरघा-२७

प्रकाशन कार्यालय

दुर्गाकुण्ड भाग बाराणसी-५

विक्रय केन्द्र

२६२।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली ६

द्वितीय संस्करण १९६६

मूल्य ८०

संमति संग्रहालय बाराणसी-५

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रंथमाला प्रकाशक-२२५ सम्पादक एन. निजामक कहमाथ द्व. जैन पॉपी राइट १९६६ सकलिन कविया तथा सम्पादका भारते भारतीय ज्ञानपीठ-गारा सुरचित Lokodaya Series Title No 26 TAAR SAPTAH ( Poems ) Edited & Compiled By AJNLYA Bharatiya Jnanpith Publication Second Edition 1966 Price Rs 8 00 © भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन प्रधान कार्यालय ६, अच्युत राव प्लम बलरघा-२७ प्रकाशन कार्यालय दुर्गाकुण्ड भाग बाराणसी-५ विक्रय केन्द्र २६२।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली ६ द्वितीय संस्करण १९६६ मूल्य ८० संमति संग्रहालय बाराणसी-५



# परिदृष्टि प्रतिदृष्टि

[ दूसरे सस्करणकी भूमिका ]

तार मसक का प्रकाशन सन् १९२३ में हुआ था। दूसरे सस्करणकी यह भूमिका सन् १९२३ में लिखा जा रहा है। यास वषका एक पाढ़ा मानी जाता है। वयमव याता क अनिवाय नियमक अधीन मसक के सहयागा जा १९४२ क प्रयोगा थ, सन् १९६३ क सन्दर्भ हा गया है। दिक्काल जावाको इस नियति मानकर ग्रहण करना चाहिए पर प्रयाग शाल कविक बुनियादी पैतरमें हा कुठ एमा बात था कि अपन का इस नय रूपम स्वाकार करना उसक लिए कठिन हा। नू सभा होत है लेकिन बुनापा किमपर कैमा उता है यह इसपर निभर रहता है कि उमका अपन जाउनम अपन अतात और चतमानस ( और अपन भविष्यम भा क्यों नहीं ? ) कमा सम्बन्ध रहता है। हमारा धारणा है कि तार मसक न पिन विविध नया प्रवृत्तियोंको सफ़तित किया था उनमें एक यह भा रहा कि कविक युग सम्बन्ध मद्राक लिए उल्ल गया था। इस बातका एक एम हा सय कवियोंन सचत रूपम अनुभव किया था, यह कहना झूठ हागा यतिक अधिक सम्भव यहा है कि एक स्पष्ट सुचिन्तित विचारक रूपमें यह बात किसा भा कविक सामान न आया हा। किन्तु इतना अमदिग्ध है कि समा कवि अपनका अपन समयस एक नय उगस बाँध रह थ। 'उत्पत्स्यत तु मम काऽपि समानधमा वाला पतरा न किसा कविक लिए सम्भव रहा था न किसाका स्वाकाय था। समा सथम पहल समाचनारा मानव प्राणी थ और समानधमा' का अर्थ उनक लिए कवि धमा म पहल मानव धमा था। यह भद् किया जा सकता है कि कुठक लिए भाधुनिक धमा हानका आग्रह पहल था और अपना मानव



धर्मिताका वह आनुनिरुताम अलग नहा दत्त सकत थ, भार  
दूमरे कुठ पम ५ चिनरु लिप् आनुनिरुता मानय धर्मिताका  
पर आनुपगिरु पदल्ल अथवा परिणाम था ।

सप्तक क कवियोंका विकास अपना अपना अलग दिशाम हुआ  
ह । सृजनशाल प्रतिभाका धर्म है कि वह 'यक्ति'य भोदता  
है । सृष्टियों जितना मिन होता है खण उसस कुठ कम  
प्रतिष्ठ नहीं होत बल्कि उनके 'यक्ति'का विशिष्टताएँ ही  
उनका रचनाम प्रतिबिम्बित हाता है । यह बात उनपर भी  
लागू हाती है चिनका रचना प्रबल बचारिक भाग्रह लिप रहता  
ह जयतरु कि वह रचना है निरा बचारिक भाग्रह नहीं है ।  
कार बेचारिक भाग्रहम अवश्य एसा एकरूपता हा सकता है  
कि उसमें यक्तियोंका पहचानना कठिन हा जाये । जैसे  
शितपाश्रपा का यपर शक्ति हावा हा सकता है बस हा मताग्रह  
पर भी शक्ति हावा हो सकता है । सप्तक क कवियाक साथ  
एसा नहा हुआ सम्पादनकी दृष्टिम यह उनका अलग अलग  
सफलता ( या कि स्वस्थता ) का प्रमाण है । न्यय कवियोंका  
राय असस मित्र भा हा सकता है—वे जानें ।

इन बात उपाम साता कवियोंका परस्पर अवस्तिम विगप  
अ तर नहा आथा है । तबका सम्भारगाएँ अवस्था उपलब्धियोंमें  
परिणत हा गया है—समा वाग्रम व अत्र बुद्ध हा गया है । पर  
इन सात नय ध्याना उद्भाक परस्पर स न योंम विशय अ तर  
नया आया है । अब भी उनक पारमें उतना ही स्वचाइक साथ  
बहा गा सकता है कि उनम मतस्य गहा है समा मन् यपूण  
विषयोंपर उनका राय अलग अलग है—चाउनक विषयमें  
समान आर धर्म आर राजनातिक विषयम आ य वस्तु आर  
गलाक छेद आर नुमन कविक दायियों—प्रत्येक विषयम  
उनका आपसमें मतभेद है । आर यह बात भी उतना ही सच  
है कि ' वे सन परस्पर एकरूपपर, दूसरका रचियों कृतिया  
आर आशाओं विचार्योंपर आर यत्नक कि एकरु दूसरक मित्रों  
आर कुत्तापर भी हंसत है । ( सिमा हमक कि इन पक्तियोंका  
लिखन समय सम्पादनका चर्चितक जान है कुत्ता किम्हा कविक

पाम नहा है और हँसाका पहलेकी सहजतामें कमी कुछ ध्यग्य या विद्रूपका भाव भी आ जाता होगा । ) ।

ज्या परिदृष्टिमें ज्या बहुत कम है तो निरपवाद रूपम समा कवियोंक बारमें कहा जा सकता है । य मनक इतना मित्र है कि मरको किया एक सूत्रम गूँथनका प्रयास "यथ हा होगा । कदाचित् एक रात—मात्रा भन्का गुनादश रखकर—सयक बारमें कहा जा सकता है समा चकित है कि तार सप्तक'न समकालान काय इतिहासमें अपना स्थान बना लिया है । प्राय समान यह स्वाकार मा कर लिया है । अपन कायका या प्रगतिका मू-यासन तो भा जमा भी कर रहा हा, जिसका वचमान प्रवृत्ति जा हा, सम न यह स्थिति लगभग स्वाकार कर ली है कि उ-हें नगरक चौकमें स्वभाम या मात्रक पधरस, बाँधकर नमूना रताया जाय यह ज्या और इसम गि ना ग्रहण करा ।" कमस कम एक कविका मुग्ध भाव ज्या है और कदाचित् दूसरोंक मनम भा अ-यक्त रूपम हो, कि अच्छा होता अगर मान लिया जा सकता कि वह तार सप्तक' म समप्रगत था ही नहीं । इतिहास अपन चरित्रों या कल्पुलका इसका स्वतन्त्रता नहा दता कि यह स्वय अपनका 'न तुआ' माने । फिर भा मनका ज्या भाय लक्ष्य करन लायक और नहा तो इमलिण भा है कि उ- परयता साहित्यपर एक स-त-य भा ता है हा—समूच साहित्यपर नहीं ता कमस कम 'सप्तक'क अ-य कवियोंक कृतियापर ( और उसम प्रभावित दूसर लग्न पर ) ता अवश्य हा । अमभव नहा कि सकलित कवियोंको अय इस प्रकार एक समरस सपूज होकर लोगोंक सामन उप स्थित होना कुछ अन्व या अमस-त-मकारा लगता हा । इतिन ज्या है भा तो उस असमनसक वायजूद व इस सम्पकको सह लेनको तैयार हा गय है इस सम्पादक अपना सामान्य मानता है । अपना औरस यह यह भा कहना चाहता है कि स्वय उस इस सम्पूजिम काइ सकाच नहीं है । परयता कुछ प्रवृत्तियों उस हान अथवा आपत्तिनक भा जान पड़ता है, और निम्न-रह इनमें म कुछका सूत्र 'तार सप्तक' स जादा जा सकता

है या जाड़ दिया जायगा तथापि सम्पादकका धारणा है कि तार सप्तक न अपने प्रकाशनका आरिष्य प्रमाणित कर लिया। उसका पुनमुद्रण कवल एक इतिहासिक दस्तावेजका उपलभ्य यनानक लिण नहा बल्कि इसलिण भी सगत है कि परवता काय प्रगतिका समशनक लिण इसका पन्ना आरश्यक है। एन मात कवियोंका पत्रशित हाना अगर कवल सयाग भा था तो मा वह एया इतिहासिक सयोग हुआ तिनका प्रभाव परवता काय विकासमें दूर तक जात है।

एसी समकालान अथवत्ताकी पुष्टिक लिण प्रस्तुत सस्करणको कवल पुनमुद्रण तक सामित न रखकर नया सवर्द्धित रूप दनका प्रयत्न किया गया है। तार सप्तक'क इतिहासिक रूपका रथा करत हुए जहाँ पन्डका सथ सामग्रा—काय आर वक्तय—अदिकल रूपस ले जा रहा है जहाँ प्रत्येक कविमें उसका परवता प्रवृत्तियोंपर मा कुछ विचार प्राप्त किय गय है। सम्पादकका विश्वास है कि यह प्रयवलाकन प्रत्येक कविके कृतित्वका समशनके लिण उपयोगा हागा आर साथ हा तार सप्तक पहले प्रकाशनस अवतकके काय विकासपर मा नया प्रकाश डालेगा। एक पीढाका अ तराल पार करनक लिण प्रत्येक कविका कमस कम एक एक नयी रचना भा द दा गया है। इसी नया सामग्राकी प्राप्त करनके प्रयत्नमें सप्तक इतन वर्षा तक अनुपलभ्य रहा तिनक दर करनका दर था उनस सहयोग तुरत मिला तिनका अनुकूलताका भरोसा था उन्नेन हा सथम दर का—आलभ्य या उदासीनताक कारण भा अममजमक कारण भा आर गायद अनमिष्यक आक्रोशक कारण भा 'जा पाम रह व हा ता सथम दूर रह सम्पादकन रह हन्धमिता ( श्री कि बहयाइ ' ) आता हाता जा पत्रकारिता ( आर सम्पादन ) धमका भग है ता सप्तक का पुनमुद्रण कमा न हा पाता यह जहाँ अपन परिश्रमका जागा है जहाँ भरना हानतर स्थितिका स्वाकार मा है।

पुस्तकक बहिरगक चारमें अधिक कुछ कटना आरश्यक नहीं है। एन्त सस्करणमें जा आदर्शवाग्नि शलकता था उसका

छाया कमम कम सम्पादकपर श्रम मा ह, किन्तु काय प्रकाशनके यावहारिक पहलूपर नया प्रचार करनेके लिए अनुमदन समाको मा य किया ह। पहल सम्करणम 'उपलधि' के नामपर क्रियोंको केवल पुस्तकका कुछ प्रतियों हा मिलीं याकी चा कुछ उपलधि हुं वह भीतिक नहीं थी। 'सम्भाष्य आयको इमा प्रकारके दूसर सम्करणमें 'गान'का विचार मा उत्तम होत हुण मा उत्तमान परिस्थितिमें अनावश्यक हा गया है। रुप मज्जाके पारमें मा स्वीकार करना हागा कि नय सम्करणपर परतता 'मसकों'का प्रभाव पड़ा है। चा जतान का अनुरूपताके प्रति विद्रोह करत है, व प्राय पात है कि उहोंन भावना अनुरूपता पहलूम स्वीकार कर ला था। विद्रोहना ण्मा विग्रयता कर मरना इतिहासके उन बुनियादा अधिकारोंम स ह जिसका यह बढ निममस्त्रस उपयाग करता ह। नय सम्करणम उपलधि कुं ता हागा ण्मा आगा का जा सकता ह। उसका उपयाग कीन कम करगा यह यानना धान न हारर क्रियोंके विकल्पपर छाट दिया गया। व चाहें तो उम तार मसक'का प्रभाव मिगनमें या उमक समगता छाप धा हालनमें मा गगा सकत है।

—'अनेय'



## विवृति और पुरावृत्ति

[ प्रथम संस्करणका भूमिका ]

तार सप्तक में सात युवक कविया (अथवा कवि-युवका) की रचनाएँ ह। ये रचनाएँ कस एक जगह संग्रहात हुई, इसका एक इतिहास ह। कविता या संग्रहक विषयमें कुछ कहनसे पहल उस इतिहासक विषयमें जान लेना उपयागी हागा।

दो बप हुए जब दिल्लाम अखिल भारतीय लेखक सम्मलन की आयाजना की गयी थी। उस समय कुछ उरसाही बघुआन विचार किया कि छोटे-छोट फुत्कर संग्रह छापनेका बजाय एक समुक्त संग्रह छपा जाय क्याकि छोट छान संग्रहाका पहले ता छपाई एक ममस्या हाती ह फिर छपकर भी व सागरमें एक बूद-म खा जात ह। इन पकियाका लखक 'याजना विश्वासा क नामस पहल ही बदनाम था अत यह नयी याजना तत्काल उसक पाम पहुँची और उसन अपन नाम ( 'बदनाम हाग ता क्या नाम न हागा ! ) क अनुमार उस स्वाकार कर लिया।

आरम्भम याजनाना क्या रूप था, और किन किन कवियाका बात उस समय साचा गया थी यह अब प्रसगका बात नहा रही। किन्तु यह सिद्धात रूपस मान लिया गया था कि याजनाका मूल आचार सहयाग हागा अथात उसमें भाग लनवाला प्रत्यक कवि पुस्तकका साभ्रा हागा। घदा भरक इतना घन उगाहा जायगा कि कागजका मूल्य चुकाया जा सके छपाईक लिए किसी प्रेमका सहयाग मांगा जायगा जा रिक्का प्रतीगा कर या चुकाईम छपी हुई प्रतियाँ ल ल ! दूसरा मूल सिद्धात यह था कि संग्रहात कवि सभा एस हाग जा कविताको प्रयागका विषय मानत ह—जा यह दावा नहा करते कि कायका सत्य उहान पा लिया ह, कन्ठ अबपा हा अपनका मानत ह।

इस जागरपर संग्रहको व्यावहारिक रूप दनका दायित्व मर सिरपर हला गया।

तार सप्तक का वास्तविक इतिहास महास आग्मन हाता है किन्तु

जब वह चुका हूँ कि इसका बनियात सहायगपर गया हुई तब उसको कमाका गिकायन करना उचित नहीं होगा। वह हम लगाका आपसकी बात ह—पाठकक लिए सहायगका इतना प्रमाण काफी है कि पुस्तक छपकर उसके सामन ह।

उनक परिवर्तनाक बाद जिन सात कवियाकी रचनाएँ बनवा निश्चय हुआ उनस हस्त लिपिया प्राप्त करत करत साल भर बीत गया फिर पुस्तकके प्रसम लिय जानपर प्रसम गडबड हुई और मुन्व महोदय कागज भी हजम कर गय। माय हा जाधा पाठलिपि रलगातीम खा गयी और सकाचवश इसकी मूचना भी किसाका नहीं दा जा सकी।

कुछ महाना वा जे कागज खरीदनक साधन फिर जटनका आगा हूँ तब फिर हस्त लिपियाका सग्र कर्नके प्रयत्न आरम्भ हुए और छह मंनकाकी औ वूपक बाद पुस्तक फिर प्रसम गया। जब छापर वह पाठकक सामन आ गी ह। मका विक्रास जा आमनी हागी वह पुन म्मा प्रकारक किमा प्रकाशनम लगायी जायगा यही सहायग माजनाका उद्देश्य था—क प्रकाशन चा बाय हा चाह और कुछ। पुस्तकका दाम भा रतना रगा गया ह कि त्रिनाम लगभग उतनी ही बाय हा जितना कि पूजा उमम गी है ताकि हमर शक्या यवस्था हो सके।

यह ता हुआ प्रकाशनका रतिनाम। अब कुछ उसक अंतरगक विषयम भा वूँ।

तार मन्तक म मात कवि मगान ह। साता एक दूसरक परिवर्त ह—जिना इसक इस ढगका सहायग कम हाता? किंतु इसस यह परिणाम न निकाला जाय कि क कविनाक किमा एक स्कू के कवि ह या कि साहित्य-जगतक किमा म्म जयका दक मस्य या ममयक ह। बकि उनक ता एकत्र नानका कारण न यग ह कि क किमा एक स्कूलक नहीं ह किमा मजिपर पच हग नग ह जभा राहा—राही नहीं गहाकि अबपा। उनमें मतक नग ह सभा महत्वपूण विषयापर उनकी राय जग-जग—जावनक विषयमें समाज और धम और राजनातिक विषयमें का-बन्धु और गलाक छ और तुक्क कविता शक्तिवाक—प्रदक विषयमें उनका आपस मन्म—। यगतक कि हमार जगतक एम सबमाय और स्वामिद मोलिक सयाका भा व समान रूपम स्वाकार

नहीं बरत जस लाकत त्रका आवयकता उद्यापाका समाजाकरण यात्रिक युद्धका उपयागिता वनस्पति घाका बुग, अथवा काननवाग और सन्मूलक गानाका उत्कृष्टता र्थात् । व सब परम्पर एक सरपर एक दूसरका र्चिया-वृत्तिया और आगाजा विवासापर एक-दूसरका जीवन परिपाटापर और यद्दानक कि एक-दूसरक मिना और वृत्तापर भा र्चते ह । 'तार सप्तक का यह सम्करण वन्त वग नहा ह अन आगा की जा सकना ह कि उमक पाठक सनी यूनाधिक मात्रामें एकाधिक नदिम परिचित हाग, तत्र व जानेंग कि तार सप्तक विसा गुटका प्रकाशन नहा ह क्याकि सन्मत्त सात कर्मियाकि सान्-सात अग अला गूट ह उनक साते-सात प्रकितत्व—साते-सान या कि एकका अपने कवि व्यक्तित्वक ऊपर सकलनकत्ताका आवा छद्म-व्यक्तित्र और लादना पना ह ।

ऐसा जान हुए भा व एकत्र सगहात ह र्चका कारण पहल बताया जा चुका ह । काव्यक प्रति एक अवपाका दृष्टिकाण उन्हें समानताक सूत्रमें बांधता ह । इसका यह अभिप्राय नहीं है कि प्रस्तुत सग्रहका सब रचनाएँ प्रयागशालानाके नमून ह या कि इन कवियाकी रचनाए र्चि अछूता ह या कि कव्य यही कवि प्रयोगना ह और बाका सब घास छात्रनेवाल, वमा दावा यहा कर्णापि नहा दावा कवल र्चतता ह कि ये गाना अवपा ह । टाके यहा सप्तक वग एकत्र हुआ र्चका उत्तर यह ह कि परिचित और सन्मत्त-याजनान इस र्ग मम्भव बनाया । इस नात तीन चार और नाम भा सामन आये थ पर उनम व प्रयागशालता नही था जिस कसौग मान लिया गया था, यद्यपि सग्रहपर उनना भा नाम हानस उमकी प्रतिष्ठा वन्ता हा घन्ता नहीं । सग्रहात कवियामें-स एसा काई भा नहा र्च जिमका कविता कव्य उसके नामक सन्मारे खडा हा सक । गमा इसक लिए तयार ह कि अभी कसौग हा वनाकि सभा अभा उस परमतत्वकी गोधमें हा लग हैं जिम पा लनपर कसौगका जर्जरत नहा रहती, बल्कि जा कसौटाका हा कसौटो हा ताता ह ।

सग्रहक बहिरगक वारम भी कुछ कहना आवयक ह । श्वर कविता प्राय चारा ओर वन्मत्त हागिय दवर सुन्मत्त सजावटक साथ छपती रही ह । अगर कविताका गलाका मीनाकारा र्ग मान लिया जाय तब यह सगत भी ह । तार सप्तककी कविता वमी जहाऊ कविता नहा ह वह



यमी हो भी नहीं सकती । जमाना था जब तलवारों और तोपों में जडाऊ हाता थी पर अब गहन भी धातुको साचाम ढालकर बनाय जात ह और हीर भा तप्त धातुका सिंकुडनक दबावस बंध हुए कणाम ! तार सप्तक में रूप सजाको गौण मानकर अक्स अधिक सामग्री दनका उद्याग किया गया ह । इस पाठकके प्रति ही नहीं लयकक प्रति भा कत्तय समझा गया ह क्याकि जो काई भी जनताक सामन आता है वह अन्तत दावदार ह और जब दावदार ह ता अपने पदाक लिए उस पयाप्त सामग्रा लकर आना चाहिए । योजना था कि प्रत्यक कवि साधारण छापका एक फ्राम द ( अथवा ) लेगा इम क आकारमें जितनी सामग्रा प्रत्यकका ह वह एक फामसे कम नहीं ह । इन वाताको ध्यानम रखत हुए मानना पन्गा कि तार सप्तकम उतन हा दामाका तान पुस्तकीका सामग्रा सस्त और मुलभ रूपम दी जा रही ह ।

और यदि पाठक साच कि एमा प्रचार प्रकागनाचित ह सम्पात्को चिन नही ता उसका उत्तर स्पष्ट ह कि इम सहायोगी याजनामें तार सप्तकने लयक हा उसक प्रकाग और सम्पादक भा ह और अपन-अपन जीवनाकार भा और प्रयवता भी । और ( यह धृष्टता नहीं ह क्वथ अपन कम्वा फ भागनका तत्परता ह ! ) क सभा इसन लिए भी तयार ह कि तार सप्तकक पाठन क हा रह जायें । क्याकि जा प्रयाग करता ह उम अबपित विषयका मात्र नहीं हाता चाहिए ।

कवियाका अनक्रम निमा हद तक आकस्मिक ह जनी वह इन्दन ह वही उमका उद्देश्य यहा रना ह कि कुल सामग्राका गवाधिक प्रभावा ल्याक डगम उपस्थित किया जाय । सवलनकता अन्तम आता ह क्याकि वह सक्कनकर्ता ह । अनुक्रम मात्रम कवियाक पन्-गौरवक दारम काइ परिणाम निकालना वा उस विषयम सवलनकताका गम्मतिका खाज लयाना मूयता हागा ।

— अनेय'

१ गजानन मुक्तिवाध

जीवन-तथ्य	३९
उत्तम्य	४१
आमा के मित्र मर	४४
दूर तारा	४८
रोल भोंवें	५०
अशक्त	५२
मेर अंतर	५४
सृष्ट्यु और कवि	५६
नूतन अट	५७
विहार	५९
पूजायागी समान क प्रति	१
नाश द्रवता	६२
सृजन क्षण	६३
अंतराशन	६७
भाग्य सवाद	६८
व्यक्तित्व और खंडहर	७०
म उनका ही हाता	७३
ह महान् !	७४
पुनश्च	७५
एक भाग्य यक्षय	७७

२ नेमिचंद्र जैन

जावन-तथ्य	३
यक्षय्य	५
कवि गाता है	४

हूवता स या	१२
भनजान चुपचाप	१५
इम क्षण में	१८
धूल भरा दापहरी	२१
आग गहन अंधेरा है	२२
क्या भाया ?	२३
जिन्गी की राह	२४
यथ !	२७
उसुक्त	२६
पुनः	३१
आज फिर जब तुमसे सामना हुआ	२५

### ३ भारतभूषण अग्रवाल

पीयन-तथ्य	८५
यस्य	८७
अपन कवि स	९०
जावन धारा	९२
सामाएँ आत्म-स्वीकृति	९५
मसूराक प्रति	९७
अहिंसा	९९
पृथ प्रमान	१००
प्रत्यावत्तन	१०२
मिलन	१०४
यिना बला	१०५
चलत चढत	१०६
प्रत्यूष-बला	१०७
गागत रहा !	१०८
पथ हान	१०९
पुनः	११०
छानवालों म एक मवाल्	११३
म भार मरा पिट्ट	११६
दूँगा म	११८

## ४ गिरिजाकुमार माधुर

जावन तथ्य	१२३
वक्षस्य	१२४
भाज हैं कसर रग रँग वन	१२७
रक्तकर जाती हुई रात	१२८
पूड़ीका टुकड़ा—	१२९
रडियमका छाया—	१३०
कुतुबक सँडहर—	१३२
पानी भर हुए घादल	१३३
धवॉर का दोपहरी	१३४
भीगा दिन	१३६
णसोसिएशन	१३८
विजय दशमा	१४०
अधूरा गात	१४२
सुद्ध	१४६
पुनः	१४८
नया कवि	१५७
दह का दूरियों	१६०
वरकुल	१६१
दो पाटा का दुनिया	१६३
असिद्ध का यथा	१६५
'पृथ्वी कल्प'	१६७
गातिका	१७५
छाया मत छूना	१७७
निवासन	१७८

## ५ प्रभाकर माचवे

जावन-तथ्य	१८१
वक्षस्य	१८५
धम-तागम	१८८
मध-मस्हार	१९०
सॉनट	१९२

यहाँ मुक्ति की प्रबल चाह	१९३
चार पत्तियों	१९३
चार ओर पत्तियों	१९३
रादा स	१९४
प्रेम : एक परिभाषा	१९५
गहूँ का सोच	१९६
वृष्टि	१९८
रखा चित्र	२०
दशोद्धारकों स	२०१
वह एक	२ २
निम्न मध्य वग	२०४
द्रा ज्द्रास्तयुते सोविस्का सोयूज ।	२ ६
कविता क्या है ?	२०७
छलना	२ ७
बानल बरसै मूसलधार	२०८
काशा क घाटपर	२ ९
भन्वथ	२११
मैं भार खाली चा का प्याला	२१२
वीसवीं सदा	२१४
कापालिक	२१६
पुनश्च	२१६
पालतू	२२१
माता का मृत्यु पर	२२२
डरू सहकृति	२२५
६ रामविलास गर्मा	
जावन-तप्य	२२९
वक्तव्य	२३०
कायक्षत्र	२३२
कवि	२३३
चाँदना	२३६
प्रयूष क पूव	२३७

क्तकी	२०८
दारदाया	२३९
सिंहहार	२४०
दिवा स्वप्न	२४१
दारासिकोह	२४३
गुन्देव का पुण्यमूमि	२४७
जल्हादकी मौत	२५०
सत्य शिव सुंदरम	२५२
हड्डियोंका ताप	२५५
किमान-कवि और उमका पुत्र	२५७
समुद्रक किनारे	२६०
विश्व शान्ति	२६२
वलयुग	२६४
परिणति	२६५
तूफानके समय	२६६
पुनश्च	२६७
करल एक हृदय	२६९

### ७ 'अनेय'

जावन-तप्य	२७३
धनतप्य	२७५
जनाह्वान	२८०
मावन मघ	२८२
उप काल का मय गान्ति	२८४
शिशिर की राका निगा	२८६
रात होत प्रात होते	२८८
जम तुझे स्वाकार हा	२८९
नयतु हे कृष्क चिरन्तन !	२९१
चार का गनर	२९३
यग भावना—मटीक	२९६
मादों का उमस	२९७
घहरा उदास	२९८

यहाँ मुक्ति की प्रवृत्त चाइ	१ ३
चार पक्षियों	१२३
चार भार पक्षियों	१९३
राहा स	१९४
प्रेम एक परिभाषा	१९५
गहूँ का साच	१९६
वृष्टि	१९८
रत्ना चित्र	२ ०
दशोद्धारकों स	२०१
वह एक	२ २
निम्न मध्य वग	२०४
द्रा उद्रास्त-युते साविस्का सोयूज ।	२ ६
कविता क्या है ?	२०७
छलना	२०७
बादल बरसै मूसलधार	२ ८
काशा क घाटपर	२०९
अन्वय	२११
में और खाली चा का प्याली	२१२
धामवी सग	२१४
कापालिक	२१६
पुनश्च	२१६
पालतू	२२१
माता का मृत्यु पर	२२२
दरु ससृष्टि	२२५
६ रामविलास गर्मा	
जावन-तप्य	२२९
वपय्य	२३०
कायक्षेत्र	२३२
कवि	२३३
धौगना	२३६
प्रयूप क पूव	२३७

कतकी	२ ८
गास्ताया	२३९
मिलहार	२४०
त्रिवा-स्वप्न	२४१
गरागिकोह	२४३
गुम्ब का पुण्यभूमि	२४७
अस्त्राकी मौत	२५०
मय गिव मुन्दरम	२५२
हड़ियौका ठाप	२५
किमान-कवि और टमका पुत्र	२५७
समुद्रक किनार	२६०
विश्व-गान्धि	२६२
कलियुग	२६४
परिणति	२६५
तूपानक ममय	२६६
पुनदत्र	२६७
करल पक रम्य	२६९

### ७ 'अनेय'

चवन-तप्य	२७५
चवतप्य	२७
जनाहान	२८०
मावन मय	२८२
ठप काठ का मन्व्य गान्धि	२८४
गिशिर का राका-निशा	२८६
रात होत प्रात हात	२८८
वम तुल स्वकार हा	२८९
वयतु ह कक चिरन्तन ।	२९१
चार का गजर	२९३
वग भावना—मगक	२९६
मादों का उमस	२९७
चहरा उदाम	२९८



चरण पर धर चरण	३००
मुक्ति	३०१
आज मैं पहचानता हूँ	३०२
बाहु मर रक रह	२०३
किमन दर्या चोंद	३०६
बदलाक बाद	३०७
पुनश्च	३ ८
ठपा दगन	३१३
म वहाँ हूँ	३१४
सबर उठा ता	३१८



नेमिचन्द्र





[ नमिचन्द्र जन्म आगरमें अगस्त १९१८ म हुआ वहा गिना पाया और मर १९८१ म एम० ए० पास किया । उमक बाद एक बप तक गुजालपुरम गिभकवा काम किया अब कलकत्तम ह । नवम्बर १९४० म कलकत्तक एक मारवाटा दफ्तरमें विगना हू आगवा राम जाने । विवाहित ।

लिखना सातवा ब्यास प्रारम्भ किया । कहानियां और गद्यकाय भी लिखा पर मुख्यतया कविता हा लिखा पिछल १० चार मालम आगव नामक निबन्ध भा । लिखना मूड पर आगित ह अत बहुत अधिक नही लिखा ह । पत्र-पत्रिकाआमें रचनाए छपना रहा ह पुम्नकाकार अभी नहा ।

पुम्नम विगप लिखस्था ह । राजनातिमें भा—त्रियात्मक रूपस । मावमवाला और कम्युनिस्ट भा । मगाम भा रचि ह । बडूकम निगाना लगान और घोडपर मवारा बरनमें बडा आनद आना ह पर कलननिया किराना इमक पयाप्त साधन नही पाता अत भ्रमणक गिए उत्सुकना बना रहता ह । जय भा बजन मिल और साजन हा ता धूमना पसन्द करता ह ।

★

१९४३ स—

इम अवधिम जीवनम बग उथल-पुथल रहा । सन १९४४-८० बम्बईम पापस थियेटर एसोसिएशन ( इपग ) का नृत्य-मण्डलक गाय और १९४३-५४ तक इगहागानम तरह-तरहक पापल बग । ( प्रताक का सहायन सम्पाकत्व इमामेन एव तरह ह । ) सन १९५४ स लिलाम सगात नाटक अवात्तमाम सम्बद्ध ह १०५० म अवात्तमाक अगान राष्ट्राय नाट्य विद्यालयमें नाट्य-मास्थिय पयात ह ।

लिखना अभा तय बया १० अनियमित ह । बगमार अनुवात् रायक अतिगिन प्य बाच थाना-बन्त कविता और बडून-बुछ आगचना लिखा ही जाना रही । अभी तक पुम्नकाकार मौलिक कुछ नही छया यद्यपि अब कुछ निगले इमका आगवा बडून बग गया ह ।

रुचि भा बढी ह । संगीत नृत्य और नाटकका शौक हावी रहा और ह । राजनाति छट्टा नहा गया उम क्षत्रक सवयापा हान सिद्धात और जागृहानताक कारण उसम जरुचि हा गयी । अब न भाकमवाग ह न कम्यनिस्ट क्माकि शायद बयस्क हा गय ह और हर प्रकारका वादिनाक दमघाटू प्रभावका पहचानन लग ह । ]



## वक्तव्य

कुछ कविताएँ पाठकके सामने प्रस्तुत हैं। उनमें नये रूप और स्वरवाक्यात्मक मूल्यांकन पाठक स्वयं करेगा। क्योंकि उनमें वारम्बार कुठ भावना यहाँ मय इष्ट नहीं। किन्तु तादृशम सघनक रूप युगम अनक बाहरी दबावके कारण जब यकित्तु दुर्बलकड हाकर बट जाता है जब बुद्धि और हृदय आत्म और व्यवहार विवक और कम किसामें परस्पर सामजस्य नहीं बचता तब चार-छह कविताओंके महार कविक व्यक्तित्वका मया उपलब्धि अमम्भव नहीं ता कवि अत्यन्त हाता है। और मया विवाम है कि कलाका अतिम मात्राका कविकारक यकित्तु महार ही मिया जा सकता है क्योंकि कविक भावना जगतका अनकानक विविधताओंमें एकमूर्तता यत्ति सम्भव है ता पाठकके लिए सुम्भ कर सकता है इस बक्तव्यका मायकता य सक्ता है।

प्रस्तुत कविताओंमें अत्रिकाका मानसिक पष्ठभूमिमें सञ्जातिक रगा का है प्रधानता है। मस्कार और विवकका कविकारक चेतना है इन कविताओंका विषय है। मनका बाहरी जगतका अनक बाह्य सत्ताप नहीं है उसमें मस्कार पग-पगपर किमा दबावसे टकरा जात है। किन्तु जब इस टकरावसे बचनका माग बह खोजन चलता है ता अपन आपका और भा अवला बना लता है। तादृश श्रम विभाजनक फलस्वरूप आज हर-एक आत्माका जितना एक इनाद बन गया है जिन साधारणत ऊपरम दखनपर भ्रम हाता है कि वह जपन आपमें सम्पण है जबकि मय यहाँ है कि उमा विभाजनक फलस्वरूप परस्पर मह्यागिता और निभरता असाधारण रूपम बर गया है। किन्तु विवक चाह जितना रूप मयका सामने रख आजक कविक मन प्रयक समस्याका सामने पाकर जब किसका गामें मुह दुवका लना चाहता है अपन मानर हा आत्मस्य हा रहना चाहता है। प्रस्तुत कविताओंके पाठ विवक गरा इस आत्मस्य जानका चाहका परस्पर का प्रवृत्ति हा कविक है। अपन मस्कारा और भावनाओंके जानका बह समस्याओंका सुम्भानक सहा मागपर—अथवा एक सामूहिक प्रयन य गरा उनका समाधान पानर मागपर—जानमें अपनी असमथनाको

चार-चार अपन विद्वान्क शरार खीर-चार डागना चाहता ह । उसक मनना मारा मधप डगा मिट्टुपर बन्ति हा उगा ह ।

एक अतिरिक्त कुछ कविताजा जम जनजान चुपचाप या डूबना गध्या म कवय मौल्यवानभूतिकी या अभिरसि ह । व उन क्षणारा मग्नि ह जब मन सधपस भागा नहा ह । पर ता भा सधपक अतिरिक्त जोरनम भय जोर जानल्लायन भो जा कुछ ह उसम कविका मन अभि भूत हा उठा ह ।

मरा विश्वास ह कि मौल्यका आकषण पणायन वा हा प्रवर्तिका मूचक मवना नगी जाना । मारिणिक जाशचनाम आजक यह गज जनक प्रचारक बार्तावाटका विषय बन गया ह । किन्तु मौदयकी अनु भति ता जाग्रतनामा जावनका स्वीकृतिशा एक अत्यंत महत्वपण चिह्न ह । जिम यकिनम मौल्यका अत्यंत क्षाण ह उस किम हदतक जावित कहा जायगा यह कना कग्नि न । मौल्यका जनभति ता यकित्वना जोर भा ममिन्नि जोर मवन्नगाट बना जना ह । पणायनगाट साहित्य व । हागा निमम मारि यशर एक प्रकारक मौल्यभासक कल्पना जागम अपन दायिबम भागता ह जा मौदयक प्रति सचमच जाकृष्ट नग ह बकि जा मौल्यका अपना दायिबहानताका एक जाट बनाना चांता ह । यहा कारण न कि रवाजनाथ जम यकित्व मचमचम मौल्यपूजक हानक कारण न आजक अत्रिका प्रगतिगाटाम अत्रिक स्थानार जोर जावन थ ।

मारिणिम प्रगतिगाटनाम मरा विश्वास न जोर उगम गिण एक मचष्ट प्रानका भा म पणायना ह । किन्तु कयका मचा प्रगतिगाटना बराकारक अकित्वका सामाजिकनाम ह व्यक्तिगतनाम नहा । आज शर उरिम प्रगतिका पकार करनका आवश्यकता हमाम न गयो ह कि हरकितवे जान लल्लायन । चका न । जनकानक सामाजिक राजनतिर बारागान जान जनजान बराकार वल्लम बाराका गितार हाता न । हमल्लिग वर ज्ञान अकित्वका विगिष्टनाजाका सामाजिकता गा चुवा ह । वल्लम सामाजिक अकार मरजारा भ्रमस वर मवत नग हा पाता । किन्तु हमल्लिग वर वान मग्नि ह रि कविम प्रगतिगाट हानका मारिणिम जम ह कि वर जावनका जर ज्ञान अकित्वका वल्ल । अपन हा सामाजिक मारिणिक जोर स्थानना न । बकि अपन दोसर भा सामा जिक मारिणिम मग्नि ।

यह बात धरानेका आवश्यकता नया गाना चाहिए कि रविपर भी  
 अथ यकितयाका भाति एक नागर्क ग्रीग सामाजिक गयिन्व ह । वह  
 मवना गी रना ह और कवि मवना हा एक मन्वपूण सामाजिक कनन्य  
 पूरा करता आया ह । पर आज यना महत्वपूण मय रविक मनस थम  
 विभाजनक कारण निकर गया ह । और वह जिविक जविक आमक द्रा  
 और जहाराग वनता जा रना ह । वास्तविकतासी चात्म वह नया वच  
 पाना ह ता वर और भा अपन आपम मिकुन रना चाहता ह । फम्बम्प  
 उमका अपना आन्तरिक रन्द और भा र जाता ह उमका जतचतनाम  
 ररा फ जानी ह जिमना माया जमर कवितापर फना ग ह । इमागिए  
 आजक र्निक् जविका कायम गाना र्छवाम ह या फिर फन ।  
 दूर गनों या ता र्किका जपनस अवकाश नया या वर बढिक जा  
 में शना उरवा ह कि भीतर मनरा जपनका शमता नहा । गाना ग  
 रात्मि कविताका हत्या हाती ह ।

समस्या समया यहा ह कि बिना मचष्ट नागर्क वास्तवर्गी नूए  
 कवि जविक का रक कवि नहा रह सकता । राजनिक सामाजिक  
 गकिता वृह चाहे या न चाहे र्म जाकर बना र जायेंगी । किन्तु यदि  
 यह विवकपूवक रात्मवका मामना करना ह ता वर अपने कायका न  
 वरल मन्वा बना मरगा बन्कि र्म मानवताकी भक्ति र्गिए एक ववा  
 भारा अस्थ बना सकगा बराकि स्वभावम ग कया मानव भक्तिना आगक  
 र । समस आज निग कवि काद कयावार नहा ।

रम स्थापनासी मचाई एक और तरलम भा परगा जा सकता ह ।  
 ज्या ग्रा थम-विभाजनक फम्बम्प कविक मनरा दुग्धा और रिपमना  
 यनी गया ह त्या-या कविता विपेकर कविता अपना महत्व गाना  
 चगा ह । और आज परिस्थिति यह ह कि वरन-म गग कविताके भविष्यक  
 रागमें वरन मन्विध ह । किन्तु रम मन्की ज ही कविके व्यक्तित्वक  
 सामाजिक अगारा न समय पानमे जमना ह । यदि र्कित्वमें धार भार  
 फना जानराग इन ररागाता सामाजिक विररणा समन रह ता कविता  
 क भक्तिरवा एक दूरगा हा चिय उपर्य हागा । जिम र्नि व्यसि कवि  
 मचष्ट भावम र्म युगा पुगन म्भारगत आन्तरिक रिगधवा मुन्धारर  
 अपना चनाका पूरा र्पना सामाजिक बना मवगा उन र्नि कविता रि  
 अपन प्रकृत र्पम रिग र्ठमा । यदि वरन र्नि वा र्तिर उमा र्नि  
 मचा कविता र्मभर ग सकता ।



क्या मासिक कविताके वारस इन सब शब्दों की बानावा आप  
 इन प्रसन्न कविताओं में गाँजे यह तापय मरा नहीं है । मक्राति-वाक्य  
 कविता रचनाका बहुत है । अपना भाग पहचाननेके लिए और फिर उसी  
 पर बन रहनेके लिए मध्यमवर्गीय प्राणा कविता निरंतर बढ़िसा ही मह  
 ताकना पता है । गायक श्रावण हम यगम श्रु कविता अभी हिन्दीके  
 लिए सम्भव नहीं है । अधिकमे अधिक अगर कवि अपने मनकी बर्झमानीको  
 भी श्रमान्तरीमे देखकर नुनियाके आग रख सकें तो वह बहुत है । क्याकि  
 हम लग्ये न केवल वह अपने अस्मित्वके विरोधसे मित्रानके मधयका  
 आरम मचष्ट करता है साथ ही वह आनवाक्य पीलियाके लिए एक नया  
 पगलगा तयार करता करता है जिसे सूर्यकीकर किमी दिन गायक  
 प्राम्त रात्रमाग निर्मित हो सके ।

—नैमिचन्द्र

## कवि गाता है

कवि गाता है—

सक्रांत काल का कलाकार कवि—गाता है ।

देख चाँदनी रातें कवि का नाच उठा उर,

स्वप्नदेश की परियों के गायन से उमका गूज उठा स्वर,

आधी मुँदी हुई पलका म

मदिरा सा किस छवि का मीठा भार लिये,

वह बेसुध-मा है,

उसके नयनों म झूल रही किस रूप-परी की सघन याद,

उसके मन में कितनी पीडा, उसके मन में कितना विपाद !

और तभी वह गा उठता है

गोले गाने,

असफलता के, प्यार प्रीति के, अपने दुख के—

कुछ बेमाने, कुछ अनजाने ।

फूट उठा है उसका उर,

वह गाता है

सक्रान्त काल का

पीडित मानसता के युग का कलाकार कवि

गाता है ।

कभी यहाँ आते हैं कोई बड़े राज्य के राजा साहब,

कितने दानी ।

कभी प्रांत के आते हैं सरकारी अफसर,

या कोई जनता के 'लीडर'

जो होते हैं सभी कला-कविता के प्रेमी—

कितने ज्ञानी ।

उन सबके स्वागत म

जब-तब किसी सेठ के घर होती ही रहती है  
दावत मेहमानी ।

कवि भी आमंत्रित होता है,

वह भी आये,

राजा साहब अफसर, या जनता के 'लीडर'—

( या वह जो हा ! )—

के स्वागत म गीत बना कर लाये गाये,

और काव्य व चमत्कार से महमानो का दिल बहलाये ।

आमंत्रण की गुस्ता से ही

सहज गव से फूल फूल उठती है तब उस कवि की छाती

—गद्गद हा कर गा उठता है कवि

तब राजा और सेठ की स्तुति के गायन ।

गाता है वह कलाकार

जब बाहर दुनिया म फैली घनघोर विपमता,

निशि निशि से उठ रहा भयानक चीत्कार

उसको तो है बस अपने सपना से ममता—

वह कलाकार ।

क्या परवा उमका एक ओर भूखे मरते लाखो प्राणी,

वह न्यि दृष्टि से देख रहा उसकी तो युग युग की वाणी,

उमके स्वर म है बाल रही देवी सरस्वती क्य्याणी ।

कवि द्रष्टा है

जोवन के पीछ छिप हूण अनात तत्त्व का ।

मानवता व अमर चिरतन नियमा का

कवि मण है ।

वह बना गाये

रम वनमान के अनि कुम्भिन वाभम अघेरे के

जडता के,  
 काले-काले क्रुद्ध गीत,  
 जब देख रहे उस के अघमूँदे नयन,  
 क्षितिज के पार दूर गरिमा के गौरव से मण्डित स्वर्णिम अतीत !

वह गाता है—

पोडशवर्षीया सुकुमारी,  
 बड़े-बड़े महलो मे रहनेवाली सुन्दर राजकुमारी की प्रशस्ति म  
 ( राजमहल के,

जिनकी गहरी नीवा पर बलिदान हा गये  
 भूखे, नर ककाल अस्थि-पजर से वे लाखा मजूर,  
 जिनके गरम रक्त से सिंचित

राजमहल या छाती ताने आज खडे ह । )

रूप और वैभव की मदिरा म विभोर

कवि गाता है

अतृप्त यौवन के, लिप्सा के

गीले गीले गलित गीत

मृत्युशीत ।

कवि गाता है,

वह कलाकार है ।

व्याकुल मानवता की सस्कृति को रक्षा का

उसके ऊपर आज भार है

भूत भविष्यत्-वतमान को देख रहा वह आर पार है ।

वह ईश्वर है,

वह ज्ञाता है,

दानवता से रादे जाते मनुष्यत्व का प्रतिनिधि है

वह कलाकार जो गाता है,

जो केवल गाता है—।



## डूबती सध्या

डूबती निस्तब्ध सध्या,  
ग्रीष्म की तपती दुपहरी प्रबल जज्ञावात के पश्चात्,  
मुनसान शांत उतास सध्या ।  
विरल सरि का चिर अनावृत गात  
जो किसी की आस क अभिराम जादू क परस स  
हा उठा है लाल  
एसा गात  
विस अनागत की प्रतीक्षा म खुला है ?  
दो किनार  
व्यथित व्याकुल—  
बाहु-बधन म विमोकी बाधने का  
नित्य आकुल,  
व्यथ ही तो है  
युगा स इस अनावृत मुग्ध यौवन का  
उपक्षित दह का आह्वान  
छवि का गान ।  
वक्ष पर फगी मुनहली  
अल्म मन अभिराम, सिक्का ,  
तन बिछाय  
चिर-मर्मपित जो टिपाय  
युगा स चुपचाप—रिक्ता ।  
अम्न हान अरण रवि का स्नह-वभव  
इस चरम अवमान क पट म

बिखेरा चाहता है

विश्व पर अपनी प्रभा का दान

इसीसे प्रत्येक पल,

मानो किसी अतिरेक का हो घनीभूत स्वरूप,

पलक म बुझ जायगा ऐस प्रकम्पित दीप के

स्नेहिल हृदय का रूप ।

थकी किरणा का जगत् को प्रीति का उपहार—

मन की कालिमा का प्यारसे धो डालने का चिरन्तन व्यापार,

जो कि पल भर मे अभी हा जायगा नि शप,

हा उठा है

इसीसे अपनी क्षणिकता मे मधुर छविमान ।

दूर जीवन के धपेडा से परे

सूने गगन म आख फाडे

कल्पना प्रिय युवक-कवि-सी सहज निष्प्रभ

खडी हैं वैभव विहीन पहाडिया ।

इस विभा के मधुर पल मे भी नही है

पत्थरा के

इन पहाडी पत्थरा के हृदय मे कुछ स्नेह कम्पन

प्राण का सचार

व खडे हैं अचल चिर अविकार ।

वह विचित्र कुरूपता उनकी

विभा के पार्श्व म

है हो उठी कुछ और भी असमान ।

गूब तन कर या अकल खडे रहने का

अमगत दप,

उच्चता का गव,

अपनी पूणता का वह निरन्तर भान,

आछा अकिंचन अभिमान,

लगता है निरर्थक ।  
इस उँचाई का नहीं है  
भूमि के रसमय प्रणय म योग,  
इस लिए  
हलकी प्रलम्बित मौन छायाए गिराता  
छिप गया सूरज कहीं पर दूर,  
और थक कर चूर  
दिन सान लगा है साय की गहरी उदासी म ।



## अनजाने चुपचाप

अनजाने चुपचाप अघगुने वातायन मे  
आतो टूई जुन्हाई सा ही  
तेरो छवि का मुधि-सम्माहन  
आज प्रिखर कर सिमट चगा है मेरे मन म ।  
छलक उठा है उर का सागर  
किमी एक अनात ज्वार से,  
किन सपनो के मदिर भार से,  
किन किरनो के परस-ध्यार से,  
पल भर म यों आन अचानक ।  
यह किस रूप-परी विरहिन के उर की पीडा  
मेरे जो म भी चुपके मे तिर आयी है  
यों अनजाने ।  
गँज उठा है अतर-जीवन  
किस फेनिल अम्णाम राग से,  
किन फृग के मधु पराग मे  
पुलकित हा आया है,  
आबुल मधु-समीर ।  
जो के इस कानन म भी फगी है सरमा,  
इस वन वा भी कोना-काना  
है भर उठा अकथ छक्कन से ,  
प्राणा के कन-वन मे  
झरता मौलमिरी के फूला-मा  
अम्पान म्नेह ।



तुम हो मुझमें दूर कहीं पर  
 यौवन के प्रभात में विवमिन,  
 डाली पर झुक झुक  
 बल खाती,  
 सहज सरल निज क्रीडा में रत  
 कुन्दकली-सी ।  
 यह मधुमास सजीला चुप चुप  
 तरे उर के आगन को  
 गोला कर-कर जाता होगा री ,  
 परिमल के मिठास से भाराकुल,  
 यह वासन्ती वयार  
 उलझ उलझ कर खोल-खोल देता होगा री,  
 तेरा कच-सम्भार सुरभिमय ।  
 कुछ अनमनी उदासी से तुम  
 महज भाव से,  
 अपने विक्च लाचनो के ऊपर से—  
 व लोचन जिनमें प्रतिपल में  
 छत्र छलक आती है धरबस  
 छनी हुई करणाद्र मधुरिमा,  
 जिनमें हा कर सुमुक्ति  
 तुम्हारे महज स्नेह का मंत्र गीलापन  
 त्रिम्बर विम्बर आता है—  
 त्रिम्बर रजनीगन्धा के मंत्र में सदा लबालम  
 भरे हुए उन चंचल नना के ऊपर में  
 हटा-हटा दता हाथी व बग हठील ।  
 यह चाँची निहार अचानक  
 उन जनार की अविक्च कलिया-म हाथ से,  
 तभी तुम्हारे मन का स्रज अनजाना उमन प्यार लज्जिला

हूँ यह जाता हाँगा रानी,  
स्वर धारा म ।  
पवन गुजरण से भी कोमल, अति कोमल वह,  
निविड गूँय म  
तेरी वाणी का स्वर  
भर भर  
गज गूँज उठता हाँगा,  
अग जग म ।

म एकाकी,  
मेर आगे टेग मेढा बिखरा फटा ह  
अनंत पथ अब भी बाकी ।  
बिना तुम्हार,  
इस वसंत रजनी की दूध भरी छाया म  
चला जा रहा हूँ मैं पग-पग  
बिना बिचारे, बिना सहारे ।  
केवल रानी,  
यह मदिरा-सी तरल जुहाइ,  
—किसी रुपसी सुरवाला के तन को आना-सी यह छायो—  
भर जाती है मेरे मन म तेरी छवि का सुधि सम्मोहन,  
और प्यार से पिघल पिघल कर  
मेरा दुख हो आता पानी ।

## इस क्षण म

आज उचल मा हृदय  
माइरन उज जाय उमके बाद  
निजन गूँय मडना सा निभत निम्सग खाली  
व्यथता री म्याह-सी वेमाप चादर से  
अभी जमा ढर गया हा गूँय जी का प्रांत ।  
हो गया है आज इस क्षण म  
न जाने किस लिए उत्साह निर्वासित  
भयानक गीत के, हिम के अचानक खुल गये हैं द्वार  
कब-कब के खे,  
जी पड गया फीका विरस निस्तार  
मर कुछ—मरण, जीवन अम्ब हृत्कम्पन !  
अमम्बद्ध अनक तागे से  
हृत्प स निकल कर  
हान चल है निःप्रयाजन ही किसी मुनसान-मे म लीन  
ओर कद्रविहीन-मा मन  
चकित है  
कुछ थका-मा भा है  
न पा कर रम विरमता का कहा भी याह,  
इम अल्पिन अनमता एकार का  
अर कौन मा है हनु  
आगिर कौन-मा है चा ?  
एक रम तुम ही  
उगामो का अमा म विरण रखा-मो

कहो स

दूर ही से घाउ दती हा बिभा के रग,  
ग्लानि की इस घटाटोप अमेद बदली म  
तुम्हारी याद ही  
वस काप उठती ह चमक-नी ।

हृदिया को मेद कर कँपनी जा उत्पान कर द,  
उम भयानक शीत बेला म  
तुम्हारी याद, प्रिय,  
पत्तियो पर वस गयी हिम की सतह-सी  
मरल पावन और चिर अविहार,  
जिम अवल्पित दियता को मुरभि से,  
सौन्दर्य से,  
मन का सभी व्यापार ही थम जाय,  
पन्न भी हो जायें म्यिर निस्पन्द,—  
उम परम आनन्द सी,  
निष्कल्प सौन्दर्य क आगे उमदती विवशता सी  
पूण, व्यापक, मधुर  
इस तुम्हार मुधि-परस स  
हा चगी  
सत्र ग्लानि, कडवाहट हृदय का दूर  
गुन रहे हा वन्द वातायन कि जम प्राण क इस कस के ।  
आज ही प्रिय,  
इस लिए ही आज पहली बार ही,  
मैं पा गया हँ तुम्ह पूरम्पूर  
चीह पाया हँ  
कि इतनी दूर स,  
इस अगम व्यवधान का भी चार कर

आकुल तुम्हारे स्नेह के आलाक का सस्पर्श  
मेरे अनमने सतप्त प्राणा को  
सदा भरता रहेगा  
चेत की पूना,  
शरद की चाटनी क गीत क बेहाश स्वर आराह से  
रात रानी के नश स,  
सुरभि से ।



## धूल भरी दीपहरी

धूल भरी दीपहरी  
जगती के कण कण में गूजी आकुल सी स्वर लहरी  
सरल पल आत-जाते  
कण सिक्ता भर लाते  
एक मूच्छना सी प्राणा पर बेमाने वरसाते  
अलसता होती गहरी !

मधुर अनमनो उदासी  
एक धूमिल रेखा सी—  
छायो है, बहता जाता है पवन अरब म यासी  
बोन दश की ठहरी ?  
आकर या चल दिय कहा ओ जग क चचल प्रहरी !

## जागे गहन अंधेरा है

आग गहन अंधेरा है मन एक एक जाता है एकाकी,  
अत्र भी है टूटे प्राणा म किम छत्रि का आकषण वाकी ?  
चाह रहा है अत्र भी यह पापी त्रिल पीछ का मुड जाना,  
एक वार फिर स दो नना क नीलम नभ म उड जाना  
उभर उभर आत ह मन म वे पिछल स्वर सम्माहन क  
गज गय थ पल भर का बस प्रथम प्रहर म जो जीवन के,  
किंतु अंधेरा है यह म ह मुझ को ता है आग जाना—  
जाना ही है—पहन लिया है मैंने मुसाफिरी का बाना ।  
आज माग म भर अटक न जाओ या आ मुधि की छलना ।  
है निस्सीम डगर मरी मुझका तो मदा जल चलना  
इम दुर्भेद्य अंधर क उम पार मिला मन का जालम  
एक न जाय मुत्रि क वाजा स प्राणा की यमुना का सगम  
सा न जाय द्रुत स द्रुततर बहुत रहने को साध निरन्तर  
मेर उसर बाच कही रुकन स बल न जाय यह अन्तर ।

॥

## क्या भाया ?

क्या भाया ?

अनजाने मन क्या इम कालाहूठ म विच कर वह आया ?

वे वन की सन्ध्याएँ निजन

मदिर अरुण, पीलो,

भाली-सी नोली

सूना निझर-तोर

कही से मौलसिरी का पग्मिल उमन

लाया मिहराता समीर,—

भर लाया ।

नही चिडियो का कलरव सुन

पूठ पूठ उठता था मन,

यह क्या गाया,

भोली चिडिया ने क्या गाया ?

ये उलझे आवरण यहा के,

वधन की छाया

धूटी जीवन की परिभाषा

रीन से आडम्बर की ओछी मी अभिगपा

इस कोलाहल व अचल म आ कर क्या पाया ?

क्या पाया ?

क्या मन विच कर वह आया ?



## ज़िन्दगी की राह

यह ज़िन्दगी की राह

है कब चुकी

चिर विकल मानव के अदूरे-मे बने उन स्वप्नलोका को,  
अरक यह गीत लहरी कब रुकी,

है कब चुकी,

एक स्वर से एक लय से चल रही है

युगा से जिसके सहारे प्रस्त मानव के हृदय की धुकधुकी  
जो कब चुकी है कब रुकी ?

है निरंतर ही प्रगति की,

एक गति से दौड़ने की छिपी मन में चाह,

मेघ माला से लगे

ऊँचे दरफ के अनुल्लघ्य अगम्य पवत ,

कापत तूफान के विशोभ से चचल

अछोर तरंग संकुल

सबभ्रमा सागरा से रौं जाने

गंध जाने का अथक उसाह

ऐसी चाह—

यह है ज़िन्दगी की राह ।

यहाँ रुकन का न कुछ अवकाश

मौन में भा तत्र गति में चल रहा है आज जीवन

किन्तु ताँभा है न मजिद पाम—

है एसा विचित्र प्रवास ।

इस निरंतर भागने में हार कर रूक भी गये  
ता—

क्या यहाँ तुम इस डगर में बिना में दाँव बात कर के  
कहोगे अपने हृदय का दद ?  
दम अनेगी यात्रा में वहीं में पत्र भर अटक कर  
जो सुनहली गहन-पीड़ा का मधुर सम्भार  
लाये हो पथिक ।

आकुल किसी का प्यार,  
आतुर भोगत-में लोचना में प्रमत्ता कुछ नेह का ममार  
उमें कह दागे किसी में ?  
और खाली

सरस मुकुमार  
अपने व्यथित प्राणा में घुमड़ती आह ?  
किंतु यह तो पत्थरों की राह ।  
दूर तक सूनी अनेगी पत्थर की राह,  
वे कठिन पत्थर

तुम्हारी क्या सुन जा दे सगे एक ही,  
यम व्यथ की तीली हमी का एक ही उपहार ।  
सुन्न-दुखों के करना मामल किसीने  
वच निमम पथरा पर पड़े,  
पत्र में टूट जायेंगे,  
नहीं है रह कुछ परवाह  
ऐसा पत्थरा का प्यार ।

यह है पत्थरा की राह ।  
यहाँ रूकने का नहीं अवसर,  
मंजिल दूर हा या पाम,  
हा उषु, मधु स मित्तन, छत्रन से भर

## जिन्दगी की राह

यह जिन्दगी की राह

है कब चुकी,

विर विकल मानव के अपूरे-मे बने उन स्वप्नलोकी को,

अरु यह गीत लहरी कब रकी,

है कब चुकी

एक स्वर स एक लय से चल रही है

युगा से जिसने सहार प्रस्त मानव के हृदय की धुकधुकी

जो कब चुकी है कब रकी ?

है निरन्तर ही प्रगति की,

एक गति से दीडने की छिपी मन म चाह

मघ माला से लड़े

ऊचे वरफ के अनुलघ्य अगम्य पवत

वापन तूफान के विश्वाभ स चचल

अटोर तरंग मंकुल,

सबभगी सागरा का रौं जाने

लौघ जान का अयक उमाह

एमी चाह—

यह है जिन्दगी की राह ।

यहाँ म्कन का न कुठ अवकाश

मोन म भी तउ गति म चल रहा है आज जीवन

विन्नु ता भा है न मजिद पाम—

है एमा विचित्र प्रवाम ।

इस निरंतर भागने से हार कर रुक भी गये  
ता—

क्या यहाँ तुम इस डगर में किसी से दो बात कर के  
बढ़ोगे अपने हृदय का दब ?

इस अकेली यात्रा में कहीं से पल भर अटक कर  
जो सुनहली गहन पीड़ा का मधुर सम्भार  
लाये हो पथिक !

आकुल किसी का प्यार,  
आतुर भीगत-में लाचना से वरमता कुछ नेह का समार  
उसे कह दोगे किसी से ?

और धोलोगे

सरस मुकुमार

अपने व्यथित प्राणा में घुमड़ती आह ?

किन्तु यह तो पत्थरा की राह ।

दूर तक सूनी अकेली पत्थरो की राह,  
वे कठिन पत्थर

तुम्हारी क्या सुन जो दे सकेंगे एक ही,  
धम व्यग्य की तीखी हँसी का एक ही उपहार ।

सुख-दुःखा के कल्पना कामल खिलीने

वज्र निमग्न पत्थरा पर पड़े,

पल में टूट जायेंगे,

नहीं है इन्हें कुछ परवाह

ऐसा पत्थरा का प्यार ।

यह है पत्थरो की राह ।

यहाँ रुकने का नहीं जयकार,

मजिल दूर हा या पास,

हा उत्पुलक, मधु से मित्रन, छलन से भर

ये प्राण,  
या हा चिर निराश उन्मत्त—  
नही अवकाश ।

जिन्दगी की राह के कुछ दूसरे ही हैं नियम  
कुछ दूसरे ही ढंग ।  
सामने जिसक प्रखरतम  
ज्याति का  
नव ज्वाल की भीषण प्रभा का लाल पावन रग—  
तडपता विद्राह से अस्थिर सितारा ।  
आज पयदणक बहो है  
चल आओ उसी आभा के सहारे,  
यथ मत खोजो किसी छवि के,  
किसी मधु-आह्वान म खोये हुए कवि के  
रगोल कल्पना के परो-लावों के किनार ।  
सब भटकना छोड़ पथा  
आज आओ साधना की राह  
जीवन एक एसी राह ।  
मवहारा  
प्रगति क उद्दाम नव उन्मत्त से बेचैन  
आकुल एक धारा  
एक मन्त प्रवाह—  
एसी जिन्दगी की राह ।  
जीवन एक लम्बी राह ।

■

## व्यर्थ ।

मागदशक बोल दो—

हो रही हैं पुतलियाँ धुँधली अनवरत चेष्टा स  
दखने की

गहन की अस्पष्टता को चीर कर अपना विलम्बित लक्ष्य,  
जो कि मानो व्यग्य से  
उपहास से,

निमम,

सरकता जा रहा है

दूर,

दूरतर,

अनुल्घ्य अभेद तम म स

अचानक ही डरी-सौ कापती धीमी किसी आवाज सा ही  
दूरतम

किन्तु मैं हारा नहीं हूँ,

फडफडाती हूँ अभी बाँह

कि अपने माग के अवरोध सारे तोड़ दूँ—

फफडा म रक्त बहता है अभी इतना

कि कस लू

उस त्रिखरती अधिर छलनामधी का

आदलय मे,

जो तोड़ दे व्यवधान

कर दे एक, एकम-एक,

दो इन दूर पर चलते सितारो को ।

किन्तु पथ दगाक,  
 विवश म हार जाता हूँ भयकर मौन स  
 बेमाप अपने प्राण म छाय हुए एकांत से,  
 सतत निर्वासित हृदय स ।  
 तिरस्कृत व्यक्तित्व के  
 थोथे असगत दप न मन की  
 सहज अनजान स्वाभाविक जनावत धार का  
 कर दिया है कुण्ठित—  
 सहज अगारे  
 कि मानो दप गय हो बुझ-स  
 जस कि ठण्डी राख-स ।  
 जल रह ह  
 माय छून स लगा द  
 प्रज्वलित कर द अकल्पित ज्वाल मालाए—  
 एमा ताह भी है,  
 है नहा बस गमित ही सहायग का  
 सब तरफ फर हुए  
 उन त्रिविध गतिमय प्राणमय  
 संचलित तत्त्वा स किसा मन्त्र-घ की  
 कुठ स्वतः स्फूर्त सजाव विनिमय का ।  
 इस लिए आ माग-दगाक  
 आज मैं उस व्यय हूँ  
 सुनसान म निजन खट ऊच महल सा ।



## उमुक्त

हा गया आज उमुक्त बिहग पल म जग्घ  
 छुट गये वासना के नाते सब माह अंध ।  
 खुल गये पलक म ममता के सब नाग-पाश,  
 कारा-तम के वासी ने दखा उपा-हास,  
 उड चला गगन म अपने आतुर पख खोल ।  
 भर गयो मुक्ति मन म कुछ वह मस्ती अमाल ।  
 उद्दाम वग स उडा चला मानो अशात—  
 हो नभ की सीमा ही छू लने का नितात,  
 उड जायेगा माना अग-जग के आर पार,  
 उसके अतर म आया है वह रक्त ज्वार ।  
 है आज न उसके प्राणा का कोई विराग,  
 वह छोड चला रुकने के सार सरजाम  
 उसके आगे क्या ठहरेगा कोई विराग ?  
 हो गया उस अपनी क्षमता का पूण वाध ।  
 चिर दिन से वन्दी आकुल-सा काई प्रनाह  
 पा जाय अचानक ही अपनी अवरुद्ध राह,  
 उसके आगे तब ठहर सवा है कौन कूल ?  
 —जब हो पडती है प्राणा की गगा अकूल ।  
 वह आज चोर देगा अम्बर का उर अनन्त,  
 युग-युग की जडता का बर देगा आज अन्त,  
 वैपम्य श्रृंखलाएँ होंगी सब चूर-चूर,  
 उग रही स्वर्ण रेखाएँ समता की सुदूर ।  
 वह आज मिटा दगा जीवन से वृथा दम्भ,



होगा उस पल म हो नवयुग का समारम्भ ।

धीरे धीरे बलियो के खुलने के समान  
उस गहन वेदना का रहस्य वह गया जान,  
है बाँप रहा जिससे संसति का वक्ष-देश  
है कण्ठ रुधा-सा, पलकें अविचल निनिमेष ।  
उस चिर-असीम क आगे निज सीमित कुरूप  
अपने मन का पहचान गया है वह स्वरूप,  
लगता है कितना ओछा अपना क्षुद्र प्यार,  
कितना दुबल है बीना अपना अहकार ।  
पर आज घुल गया है सारा वह छन्नवेश  
पहचान गया है वह अपनी लघुता जशय,  
व धार अपावन छलना के पल गये बीत—  
वह आज विसर्जित है प्रभु चरणा म पुनीत ।  
ममता क बधन बधन की ममता समस्त  
अन टूट चुकी उसका पय फला है प्रशस्त ।



## पुनश्च

तार मन्त्र को प्रनामित हुए अब लगभग बीस साल हो गये । स्पष्ट है कि इस बीच तम सप्तक के प्रत्येक कविकी सामान्य कविता सम्बन्धी, और स्वयं अपनी काव्य प्रक्रिया सम्बन्धी धारणाओंमें बहुत-कुछ विकास या परिवर्तन हुआ ही होगा । पर उनकी चर्चा लिए यह उपयुक्त स्थान नहीं । बल्कि अब सामान्यतया और तार सप्तक के अनुभव के कारण विशेष रूपसे मुझे लगता है कि कविता अपनी कविताक सम्बन्धमें चाहे सफाई के तौरपर चाहे व्याख्या के रूपमें कुछ भी कहना कविता और पाठक दोनों के बीच दीवार खड़ी करना है । उसमें लगभग अनिवार्य रूपसे पाठक का ध्यान कवितामें अधिक कविने वनस्पतिपर चला जाता है जिसमें उस काव्यकी अनुभूति का ग्रहण अप्रामाणिक और कविके सिद्धांतकी चर्चा मुख्य हो जाती है । स्वयं तार सप्तक की परवर्ती आलोचनाएँ इस बातका सबसे बड़ा प्रमाण हैं । कुछ तो तार सप्तक के कवियाँ और विशेषकर सम्पादक महोदय के धुनी भरी स्वर तथा सिद्धांतवादी के कारण और कुछ हिन्दी के आलोचकोंकी मूल्य के कारण उन कवियोंके काव्यनिक प्रयोगवादी की हाँ चर्चा अधिक हुई उनकी कविताका उचित आकलन या मूल्यांकन नहीं हो सका ।

दुर्भाग्यवश 'तार सप्तक' एक अन्य भ्रमवा भी शिकार हुआ । साधारणतः यही माना और समझा जाता है कि तार सप्तक किसी मुश्किल काव्य-आलोचनका अग्रदल था जिसके अग्रगण्य और नेता उगवे सम्पादक महोदय थे । परन्तु सम्पादक महोदयम सम्बन्धित विभिन्न साहित्यिक और व्यक्तिगत पूर्वाग्रहोंकी तीव्र आलोचनाका बंगुमार बोझ भी तार सप्तक के कवियाँ और उनके निमित्तमे माँ लेनी हुई नया काव्य-चरित्रको उगाना पड़ा । तथाकथित प्रयोगवादी तथा समस्त नवान काव्यको सारी परवर्ती आलोचनामूलतः उनके सम्पादक के मत की साहित्यिक धार और कवि 'अभय का आलोचना हाँती गही और इन कवियोंका अपना व्यक्तिव उपनिगत भाँ हुआ और चलन भाँ समझा गया । इसन

विमो ह् तत्र उन कविप्राप्ते भावो विकामको और हिन्दी काव्यकी पद्यवर्ती शिवा तथा गतिका अहितकर रूपम प्रभावित किया और मूल्या वनक मान्यतामें भा विवृति उत्पन्न की।

रम भ्रमका निराकरण गायक रम अवसरपर समचित ही। वाम्भवमें तार मन्त्रक व मन्त्रात्क मन्त्रोत्पत्तिका हाथ उमरं प्रकाशनमें चान् जितना रहा हा पर उमका परिवर्त्यता उनकी नहीं थी और न उसम मग्रहीत कवि ही मन्त्र उनकी पमन्त्रके कारण एकत्र हुए थ। बल्कि मन्त्रात्क मन्त्रोत्पत्त स्वय ही उम मग्रन्में गायक इम कारण ही अधिक थ कि वह उमके प्रकाशनम प्रमग रूपम महायक हो रहे थ। साथ ही मग्रहीत कवि स्वय भा विमो सामाय साहित्यिक या अथ मायताभक्ति कारण नहीं बकि नितात यक्तिगत कारणमि विगच्छ परिस्थिति और मयोगवत्ता एक साथ थ। तार मन्त्रक विमो भी रूप या अथम विमो साहित्यिक आलोचन या प्रवृत्तिम प्रेरित न था। उमके कवि प्रयोगवत्ता नहीं थ गायक उम अथमें भा नहा जो मन्त्रात्कन पहले अपनी भूमिकामें उनपर आरापित किया और जिमे फिर बान्में मद्दान्तिक आजार दे दिया गया। उनकी अनुभूति और अभिव्यक्ति ज्ञाना तत्कालीन सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियाकी स्वाभाविक और उगभग अनियाय परिणति थी।

दार्शनिक भी गायक स्थितिमें कहीं काइ झमका नहीं ह यद्यपि तार मन्त्रक का मन्त्रात्कय भूमिका उममें मग्रहीत कविप्राप्ता साहित्यिक स्थिति के लिए बन् अछा नहीं सिद्ध हा सका। किन्तु स्वाधीनताके बाद जब तार मन्त्रक का ओर पाठका आलोचकाका ध्यान आकर्षित हुआ और उमका सम्भावनाका पत्तान कर मन्त्रात्क मन्त्रोत्पत्त वन ही और भा मन्त्र निकालवत्ता दखना बनाया ता स्थितिन एक तथा हा मान् न लिया। दूसरा मन्त्रक और तामग मन्त्रक के प्रकाशनम आलोचकारा य भ्रम परी तरफ बतारान्ता निष्ठित न तथा कि मन्त्रात्क मन्त्रोत्पत्त सुवन्ध प्रकाशना नामक विमा नय काय आलोचनके प्रवक्तक ह।

तार मन्त्रक का मन्त्रात्कय भूमिका कुछ एक मद्दान्तिक उक्तिप्राप्ति बखतर मन्त्र उन मन्त्र कविप्राप्ति एकत्र हानर कारणका विवरण माय था। पर बन्त्रक ज्ञाना मन्त्रका का भूमिकाश्रम नियमित सिद्धान्त विवरण ज्ञाना और ज्ञान का धारणा-प्राप्ता रूप धारण कर दिया। दूसरा मन्त्रक से मन्त्रात्क मन्त्रोत्पत्त तार मन्त्रक व मन्त्रा कविप्राप्ती अन्तम आलोचकारका जखर तन का बना

तो तार मन्तक के कवि ऐसे कवि थे जिनके चारों ओर कम-से-कम सम्पादकनी यह धारणा थी कि उनमें कुछ न और न पाठक सामान्य रूप से जानें पात्र हैं । तार मन्तक की भूमिका में मन्तक की राजनीति के आभासभूत विस्वाम की चरित्रक माय उन्हां के विचार तार मन्तक एक नयी प्रवृत्ति का परचोसार मागता था हमने अतिरिक्त और कुछ नहीं । तार मन्तक के कवियों का एकत्र करना और पाठक समझकर उन्हें पाठकों के सामने लाना यह मिय्या था कि हम न भा हो पर इन कवियों के माय मगमर अयाय तो न ही । पर यह जान उम समय इतिहास विश्वमनीय गी कि हमारा और तार मन्तक मन्तक सम्पूर्णत सम्पादक प्रयत्न मयोजन और उनसे मगठनात्मक सामर्थ्य और पहचाने कर थे । यह बात तब स्पष्ट न हो सकी कि जहाँ मूत्र तार मन्तक के कवियों को अपना सम्पादक या कि वह प्रकाशक चना था वहाँ पाठकों के दाना मन्तक के कवियों का सम्पादकने चना था । इन तार मन्तक में कुछ-एक मन्तक स्वतंत्र मन्तक और पूरे विभिन्न कवि व्यक्तित्व सम्मिलित होनेसे वास्तव में इन मन्तकों में पीछे मूत्र उनसे सम्पादक की माहिती और काव्य-सम्बन्ध मायनाओं की प्रेरणा और अभिप्रेरणा थी । इन्होंने न केवल उपाय नवीन कायना प्रकाशन किया बल्कि मन्तकालान कायक रूपको एक विवेक सिद्धात मोटा । उनके कारण और परिणाम-स्वरूप प्रकृत-म तन्तक कवि जान अनजाने एक सामान्य किन्तु अस्पष्ट और अस्पष्ट कायक रागनासे इन्होंने एकत्र हाकर अय कायमि व्यक्तियों का विरोध जयवा उनसे अपनी भिन्नता प्रकट करने की सिद्धातें प्रवृत्त हुए । मन् १९५० के बाद नवीन सिद्धात कायने एक विवेक सिद्धात में मुहक गुणवत्ता और मन्तकनामें पत्र जानम मन्तक के प्रकाशन का भी वृत्त-वृद्धि हाय है । मन् १९५४-५५ के आमनाम ना तन्तक कविया के बीच चर्चा का मन्तक वना विषय ही पत्र हा गया था कि वीन तिस 'मन्तक में सिद्धात जायगा अथवा नहीं ही सिद्धात जायगा । कवि-गण अपनी और हमारा का आभिनयना मायकता और मन्तकता कवि हाना या न हाना मन्तक कुछ मन्तक में गामिन्त हाल-न हानम अंकने ग्य थ । यह परिस्थिति कायकन मूत्रा और मन्तकनामें एक विवेक प्रकाशक भ्रष्टता और मन्तकना का गन्तव्य था । मन्तक एक बड अवाच्छनीय प्रकाशक माहितीयक मन्तक ( पत्रमन्तक ) के माधन और प्रताक उन रह थ ।

दुनाकरना 'तार मन्तक' भी हम मन्तक का पन्ती वना ग्या जान

पड़ता था और निरन्तर पन्ता रहा है। उसके नये संस्करणके प्रकाशनपर यह कहना मवया अप्रामाणिक नहीं है कि वास्तविकता यह नहीं थी। तार मन्त्रक की स्थिति वास्तविक दोना सप्तकास मौलिक रूपम भिन्न थी और वह किमी आन्तर्लन या साहित्यिक मरणण वक्तिवी उपज नहीं था। तार मन्त्रक व कवि न तो स्वयही किमी भी रूपम किमी भी अग तक एसी किमा प्रवर्तितम परिचालित हुए थ न व किमी भी प्रकारमे सम्पात्कके ही वसागिक मद्दानिक जयवा मगनात्मक प्रयत्नाके अग थ चाह फिर यकित गन स्तरपर उनमे कवियाकी कितनी ही घनिष्ठता क्या न रही हो। महत्व पण वान य न्नी कि तार मन्त्रक के प्राय सभी कवि एक दूसराके कुता और मित्रापर न्यत थ बल्कि यह कि उनका कोई दू नही था कोई ग न्नी था—और आज भी न्नी है। उनकी उपलब्धि चाह जो हा पर व स्वतंत्र रूपम ही अपन काव्यका पथ खोजत और बनान रहे हैं।

य मव कटना आज इसलिए और भी आवश्यक तथा महत्वपूर्ण हो गया है क्योंकि हिन्दामें संरक्षण विनापकर साहित्यिक संरक्षण का बाजार बड़ा गरम है—पुगानी पीठामें भा और नयाम भी। मरा विश्वास है कि यह हमारे साहित्यिक जीवनके लिए गम और स्वस्थ नहीं है। य न केनउ नितान्त व्यक्तिगत स्तरकी दलबन्दी और गन्धवाजाको उकमाना है बकि उसके कारण तथा रचनाकार प्रतिभावान हाकर भी जीवनको सीध खन भागन और उम अनुभूतिका अपन प्रति निमम र्मान्तारीमे वाणी दनके बजाय किमान-किमी मरणणकी तणा करन गता है—राजनीतिक दू का साहित्यिक नताभाकी अथवा प्रकाशकीय वृपाकी। य स्थिति रचना कारका बभा वयस्क नहीं गन गता। मैं मानता है कि बकि अपन निवाय किमीका वक्तु न्नी हाता चाहिए। प्रकाशनकी प्रामाकी अथवा अय निमा भा प्रकारकी सुविधाके लिए उम अपना वफादारीका मौल्य न्नी करना चाहिए। वयस्क अपन प्रति मल्वा र्कर नी सम्भव है कि किमा मणम व किमा बन्तर मयम माणाकार करन उनका प्रवक्तु भी वत मक। अन्त्या अचार और विनापनका प्रधानताक म यगमें सम्भारना क्या बातका अधिक है कि वह किना-किनी प्रक या अपक गकितया या दम्भितका माणन मात्र बना र्ना ज्ञाय और दूमगका जूनका ही मौलिक जननति मन्त्रक और भाति प्राणिम मन्ना-मवाकर पण करता र्ना। दम्भितवह मन्त्रक कविता है न्नी मन्त्रक मन्नामक कायका य लव मन्त्रक म्ना है किमका म्ना मन्त्रक मिद्ध न्नी मक्ता है। —नैमिचन्द्र जैन

आज फिर जब तुमसे सामना हुआ

कितने दिना बाद आज फिर जब  
तुम से सामना हुआ  
उस भीड़ में अकस्मात्,  
जहाँ इसकी कोई आशका न थी,  
तो मैं वैसा अचकचा गया  
रग हाथ पकड़े गये चार की भाँति ।  
तुरत अपनी घोर अवृत्तता का  
भान हुआ  
लज्जा से मस्तक झुक गया अपने-आप ।  
याद पडा तुमने ही दिया था  
वह बोध,  
जो प्यार के उलझ हुए धागा को  
घोरज और ममता से सँवारता है,  
दी थी वह करुणा  
जिसके सहारे  
आत्मियो के असह्य आघात सहे जाते हैं,  
सह्य हो जाते हैं—,  
और वह अकुण्ठित विश्वास  
कि जीवन में केवल प्रवचना ही नहीं है  
अन्तर की अकिंचनताएँ प्रतिष्ठित  
सहयोगिया की कुटिलता ही नहीं है,  
किसी क्षणिक सिद्धि के दम्भ में  
गिस्वर की छाती बुचलने का उद्यत

धौनो का अटकार ही नहा है—  
जीवन म आर भी कुछ है ।

तुम्हारी ही दो हुई थी  
वह अनय अनुभूति  
वि वषा की पहली बाजार स  
सिर चन्नी धूल के दबत ही  
गुली निसरने वाली  
आकाश की गार्तिकायिनी अगाध नीलिमा,  
वर्षा बाद अचानक  
अगरण हा मिला  
जिमी की अम्लान मित्रता का सङ्ग,  
दूर रह कर भी साथ साथ एक हो दिना म  
चरत हुए महकमिया का आस्वास्त—  
य मय भा तो जीवन म हैं  
तुमन कहा था ।

यह मय  
न जान आर क्या क्या  
मुन या आया  
ओर एक अप्रुव गानि स  
पग्नि हा गया म  
जय आज  
अचानक हा भाड म  
द्वन जिना या  
तुमन या सामना हा गया  
आ मर एकांत ।



गजानन मुक्तिबोध



बीना का जहकार ही नहा है—  
जीवन म जार भो कुछ है ।

तुम्हारी ही दो हृद थी  
वह अनय अनुभूति  
कि वषा की पहली बाठार स  
सिर चढी धूल क दबत ही  
खुली निखरने वाली  
आकाश की शान्तिदायिनी अगाध नीलिमा  
वषा बाद अचानक  
अकारण ही मिला  
किसी की अम्लान मित्रता का सदस,  
दूर रह कर भी साथ साथ एक हो दिशा म  
चलत हुए सहकर्मिया का आश्वासन—  
य सन भा तो जीवन म हैं  
तुमन कहा था ।

यह सब,  
न जाने आर क्या क्या  
मुन याद आया  
और एक अपूव शान्ति से  
परिपूण हो गया म  
जब आज  
अचानक ही भीड म  
इतने दिना बाद  
तुमस या सामना हा गया  
आ मर एकांत ।



गजानन मुक्तिबोध

•



## जीवन-तथ्य

**मुक्तिबोध, गजानन माधव**—जन्म नवम्बर १०१७ में ग्वाल्हरी के एक कमरे में हुआ जहाँ मौ माल पहले कवि के पूज्य जा के थे । पिता के पुत्रिम मन्त्र्यवर्ग हानक कारण और बार-बार बन्दा हानके कारण मुक्तिबोधकी पत्नीका मिलमिला दूता जटता रहा फलतः १९३० में उज्जैनमें मिलमिल परीणाम अमफलता मिठा जिम कवि अपन जीवनकी पत्नी महत्वपूर्ण घटना ' मानता ह । उमक बाद पत्नीका मिलमिल ठीक चला और साथ ही जीवनके प्रति नयी गवेष्टना और जागृकता बदन लगी । सन १०३५ में ( माधव कवि उज्जैनमें ) साहित्य-लेखन आरम्भ हुआ । सन १९३८ में बी० ए० पास किया १९-९ में विवाह उमके बाद ' निम्न-मध्यवर्गीय निष्क्रिय माम्दरी जा अत तक ह ।

' मालवके एक औद्यागिक क्षेत्रमें जिममें बने गहराके गुणाका छाड कर उमकी सब विनोपताएँ ह यह बन्दा रोज जिता रहता ह । नियमा नुबूल बारह बजे दोपहर स्कूल जाता ह लौटती बार अपने परसे अपनी मिगरेटपर ब्याला भरोसा गयना हुआ घरकी ओर चल पडता ह । साथ साथ बजे पानवाके दूबानपर नित्य मिता ह । उज्जैनके प्रीगजम वही भी इग ध्यक्वितना मन्त्रगदनी करते हुए आप पा मकने ह । '

\*

१९४३—

नौकरियाँ पकडता-छोडता रहा । निष्क पत्रकार पुन निष्क मरवाती और ग र-भरकारी नौकरियाँ । निम्न मन्त्र्यवर्गीय जीवन, बाल-धरुचे दवा गुरु जन्म-मृत्यु ।

जीवनकी स्मरणीय घटनाओंमें विनोप उन्मनीय ह भागत इतिहास और मन्त्रुति नामक पुस्तकका प्रकाशन और उमक परिणाम । यह पुस्तक मध्यप्रदेश सरकारके शिक्षा विभाग गरा पाठ्य-पुस्तक भी स्वीकार हुई और उमी सरकार-गल लोक मुद्रणा कानूनन अधीन अवध भी घोषित हुई । उमक विरोधमें आन्दोलन हुए परचेमाडी हुई कुछ नगरांमें पुस्तक

को हांग जगया गयी सम्प्रदायवादी तत्वान उग्र विरोध रिया। रिगा लेखकक रिण उमका पुस्तकका गैरवानूना बगर रिग्या जाना एक विरुध्द अनुभव होना ह—प्रेमर अनुभव जमा ही तीव्र और अविस्मरणाय ।

कामायनी एक पुनर्विचार प्रकाशित हा चका ह । नया कविताया आम-मध्य नामक निबन्ध मग्रह प्रकाशकके पाम ह ।

मरा मन नव-क्यामिकवादी तरफ दौट रहा ह अर्यान् एमी वाच्य रचनाको आर जिनका कथ्य ध्यापक हा जिनम जावनक विरुध्दिन तथ्या और उनक मल्लिष्ट निष्कर्षोका चित्रण हा । पता नया यह मुझग वहाँ तक मरगा ।

११ मितम्बर १९६४ का लम्बी बीमारीक बाद भक्तिवापरा निघन हो गया । कविता-मग्रह चाटका मह रग्य ह निबन्ध-मग्रह एक मास्त्रियककी लयरा मरणोत्तर प्रकाशित हुए ।

मात्रके विस्तीर्ण मनाहर मन्तनामें-म घूमती हुई शिप्राकी रक्त भाग मांझें और विविध-रूप वधाकी छायाएँ मेरे किशोर कविकी आद्य सौंदर्य प्रेरणाएँ थीं। उन्नत नगरके बाहरका यह विस्तीर्ण निमग्नताके उम व्यक्तिके लिए जिमकी मनारचनाम रगीत आद्य ही प्राथमिक है अत्यंत जातीय था।

उमके बाद शरीरमें प्रथमत ही मज्ज अनुभव हुआ कि यह मौल्य ही मर काव्यका विषय हो सकता है। उसके पहिले उन्नतमें स्व० रमाकाकर गुल्क स्कूलकी कविताएँ—जो माखनलाल स्कूलकी निकली हुई गायी थी—मुझे प्रभावित करती रहीं, जिमकी किशोपता थी बातको मोघा न रखकर उम केवल सूचित करना। तब यह था कि उममें वह अधिक प्रवृत्त होकर आता है। परिणाम यह था कि अभिव्यजना उन्नी हुई प्रकृत होती थी। काव्यका विषय भा मूलत विरह-जय वरणा और जीवन-ज्ञान हा था। मित्र कहते हैं कि उनका प्रभाव मुनपर-स अवनक नहीं गया है। शरीरम मित्राके महयाग और सहायनाम म अपने आत्मिक क्षत्रम प्रविष्ट हुआ और पुगना उल्लसन भरी अभियक्ति और अमृत वरणा छात्रर नवीन मौल्य-भावक प्रति जागरूक हुआ। यह मेरी प्रथम आम चेतना था।

उन शिना भा एक मानविक मघप था। एक ओर शिनाका यह नवीन मौल्य-काव्य था, तो दूसरी ओर मर बाल-मनार मगनी माहिय के अधिन मानवनामय उपयास-लासका भा मुकुमार परन्तु तीव्र प्रभाव था। तौत्नायक मानवीय समस्या-सम्प्रदा उपयास-या महात्मा वमा ? समपका प्रभाव कहिए या वपकी मांग या दाना मने हिन्नाक मौल्य लाकको ही अपना क्षत्र चुना और मनरी दूसरी मांग वस हा पीछ रह गयी जम अपन आभाय रात्रमें पीछ रहकर भी साथ चर चरत है।

मर बाल-मनरी पन्नी भूम मौल्य और दूसरी विव-मानवता गुण-सु-—इन शानाका मघप मर माहियिक जावनकी पन्नी उन्नत

थो । इसका स्पष्ट वैज्ञानिक समाधान मुझ विषीसे न मिला । परिणाम था कि इन अनक आंतरिक दृश्योंके कारण एक ही काव्य विषय नहीं रच सका । जीवनके एक ही याजूका लेकर मैं कोई सर्वांगीणी दानकी मोनार खडी न कर सका ।

साथ ही जिनासाके विस्तारके कारण कथाकी ओर मरी प्रवृत्ति बढ़ गयी । इसका दृढ मनमें पहले ही-मे था । कहानी-लेखन आरम्भ करते ही मझ अनभव हुआ कि कथा-नरत्व मर उतना ही समीप ह जितना काव्य । परन्तु कहानियाँ म बहुत ही घाडा लिखता था अब भा कम लिखता हूँ । परिणामत काव्यको मैं उतना ही समीप रखने लगा जितना कि स्पष्टन एमीलिए काव्यको ध्यापक क नरी अपनी जीवन-सीमामे उमकी सामाको मिला देनकी चाह दुर्निवार हान लगी । और मरे काव्यका प्रवाह बरला ।

दूसरी ओर दार्शनिक प्रवृत्ति—जीवन और जगतके दृश्यों—जीवनके आन्तरिक दृश्यों—इन सबको सुज्ञानकी ओर एक अनुभव मिद्ध व्यवस्थित तत्व प्रणाली अथवा जीवन-दान आत्ममान कर लेनकी दुर्म प्यास मनमें हमेशा रहा करती । आगे चलकर मरी काव्यकी गतिकी निश्चित करने थाला सशक्त कारण यही प्रवृत्ति थी । सन् १९३५ में काव्य आरम्भ किया था सन १९३६ मे १९३८ तक काव्यके पाछ कहानी चन्ती रही । १९३८ से १९४२ तकके पाँच साल मानसिक सघष और बगमोनीय व्यक्तिवाङ्के थष थ । आंतरिक विनष्ट शान्तिके और शारीरिक ध्वसके इस समयमें मरा व्यक्तिवाङ् कवचकी भाँति काम करता था । बगसोकी स्वतंत्र क्रियमाण जीवन-शक्ति (elan vital) के प्रति मरी आस्था बर गयी थी । परिणामत काव्य और कहानी नय रूप प्राप्त करते हुए भी अपन ही आसपास घूमते थे उनकी गति ऊध्वमखी न थी ।

सन १९४२ के प्रथम और अन्तिम चरणमें मैं एक एसी विरोधी शक्तिके सम्भाव आया जिसकी प्रतिकूल आलोचनामे मझ बहुत कुछ सीखना था । गुजालपुरका अद्ध-नागरिक रम्य एकस्वरताके वातावरणमें मरा वातावरण भी—जो मरी आंतरिक चीज ह—पनपता था । यहाँ लगभग एक सालमें मन पाँच सालका पुराना जडत्व निकालनकी सफल अमफल कोशिश की । इन उद्योगके लिए प्रेरणा विवक और शान्ति मन एक एमी जगहसे पायी जिसे पहले म विरोधी शक्ति मानता था ।

क्रमशः मरा झुकाव माकमवाङ्की ओर हुआ । अधिक वैज्ञानिक अधिक मूत और अधिक तजस्वी दृष्टिकोण मझ प्राप्त हुआ । गुजालपुरमें पहले

पहल मन कथातत्त्वके सम्बन्धम आत्म विश्वास पाया । दूसरे अपन बाध्यकी अस्पष्टतापर मेरी दृष्टि गयी, तीतर नये विकास-मयकी तलाश हुई ।

यहाँ यह स्वीकार करनेमें मुझे सवाच नहा कि मेरी हर विकास स्थितिमें मुझे घोर असांताप रहा और ह । मानसिक द्वन्द्व मेरे व्यक्तित्वम बद्धमूल ह । यह म निकटतासे अनुभव करता आ रहा है कि जिम भी क्षेत्रम म हूँ वह स्वयं अपूर्ण ह और उसका ठीक-ठीक प्रकटीकरण भा नहीं हा रहा ह । फलत मुक्त अशांति मनके अन्दर घर निय रहता ह ।

### लेखनके विषयमें

म कलाकार की स्थानांतरणामी प्रवृत्ति ( माइग्रेशन इस्टिबल ) पर बहुत जोर देना है । आजके बहिष्कृतमय उल्लसने भरे रंग बिरंगे जीवन को यदि देखना ह तो अपन व्यक्तिगत क्षत्रसे एक बार तो उडकर बाहर जाना ही हागा । बिना उसके इस विशाल जीवन-समुद्रकी परिमीमा, उसके तट प्रत्याग भूराष्ट्र, आँखामे ओट ही रह जायेंगे । कलाका कट्टर व्यक्ति ह पर उसी कट्टरका अब शिक्षा-व्यापी करनेकी आवश्यकता ह । फिर युगमयि-बालम कायवर्ता उत्पन्न हात ह कलाकार नहीं इस धारणा को वास्तविकताके द्वारा गलत साबित करना ही पडेगा ।

मेरी कविताअंके प्राप्त-परिवर्तनका कारण ह यही आन्तरिक जिज्ञासा । परन्तु इम जिज्ञासु-वृत्तिका वास्तव ( ऑब्जेक्टिव ) रूप अभी तक कलाम नहीं पा सका है । अनुभव कर रहा हू कि वह उपयाम-द्वारा हा प्राप्त हा सक्ता । वस कायमें जावनके चित्रकी—यथा वार्ताविक टाइप की—उद्भावनकी अथवा ताद्र विचारकी, अथवा गुद्ध शब्द चित्रात्मक कविता हो सक्ती ह । इहाक प्रमाण म करना चाहता हूँ । पुरानी परम्परा बिलबुल छूटती नहा ह पर वह परम्परा ह मेरी ही और उसका प्रसार अवश्य हाा चाहिए ।

जीवनक इस बहिष्कृतमय विकास-स्रोतका दखनके लिए हन भिन्न भिन्न बाध्य-रूपाको यहाँ तक कि नाट्य-तत्त्वका, कवितामें स्थान देनका आवश्यक्ता ह । म चाहता हूँ कि इमी जिज्ञामें मेर प्रमाण हा ।

मेरी म कविताएँ अपना पय कुनवाले बचन मनवा हा अभिव्यक्ति ह । उनका साथ और मूल्य उसी जीवन-स्थितिमें छिपा ह ।

—ग० मा० मुक्तिबोध



## आत्मा के मित्र मेरे

वह मित्र का मुख  
ज्यो अतल आत्मा हमारा बन गयो साक्षात् निज मुख ।  
वह मधुरतम हास  
जसे आत्म परिचय सामन ही आ रहा है मूत हो कर ।  
जो सदा हाँ मम हृदय अंतगत छिप थ  
व सभी जालोक खुलने जिस सुमुख पर ।  
वह हमारा मित्र है,  
आत्मोपता के केन्द्र पर एकर सौरभ । वह बना  
मेरे हृदय का चित्र है ।  
जो हृदय-सागर युगो स लहरता,  
आनन्द मयाकुल चला आता  
कि नीला गाल क्षण-क्षण गूजता है  
उस जलधि की श्याम लहरा पर जुड़ा आता  
सघनतम श्वेत, स्वर्गिक फेन, चंचल फेन ।  
जिसको नित लगाने निज मुखो पर स्वप्न की मदु मूर्तियाँ से  
अम्पराएँ साझा प्रात  
मदु हवा की लहर पर स सिन्धु पर रख अरण तलुएँ  
उतर आती, कार्तिमय नव हास ल कर ।  
उस जलधि की युग-युगा की अमल लहरो पर  
जुड़ा जो फेन,  
अन्तर के अतल हिल्लाल का जो बाह्य है सौन्दर्य—  
कोमल फेन ।  
जिसके आत्म मंदिर म समर्पित,

दु ख-सुखो को साक्ष प्राप्त जो अकेला  
याद आता मुख हमे नित ।

काल की, परिवतना की तीव्र धारा मे बहा जाता  
मधुरतम साथ जिसका,  
प्राण की उत्थान गति की तीव्रता म  
बह रहा उच्छवास जिसका,  
जो हमारी प्यास मे नित पास है—  
व्यक्तित्व का सौरभ लिये, व्याकुल निशा सा  
निवृत्ता के निज क्षणा म  
जो कि उर की वालिका का मौनतम विश्वास है ।  
जो क्षेप्ता मेरे हृदय को निज हृदय पर  
आत्म-उमुक्तीकरण की सुली बेला म कि जब  
दो आत्माएँ  
वालको मी नग्न हो कर खड़ी रहती  
दिव्य नयना म सहजतम-बोध नीलालोक ल कर ।  
वह परस्पर की मृदुल पहचान, जैसे पूण  
चन्दा खोजता हो  
उमडता नि सीम निस्तल  
कूलहोना श्यामला जल राशि म प्रतिबिम्ब अपना,  
हास अपना,  
वह परस्पर की मृदुल पहचान जैसे  
अतल गर्भा भव्य धरती हृदय के निज कूल पर  
मदु स्पग कर पहिचान करता, गूढतम उस विशद  
दीघच्छाय श्यामल-शाय धरगद वृक्ष की,  
जिसके तले आश्रित अनेकों प्राण,  
जिसने मूल पृथ्वी के हृदय मे टहल आये, उलझ आये ।

मित्र मरे,  
 आत्मा के एक !  
 एकाकीपने के अग्रतम प्रतिरूप ।  
 जिससे अग्निक एकाकी हृदय ।  
 कमजोरिया के एकमेव दुलार  
 भिन्नता में विकसल वह तुम अभिन्न विचार  
 बुद्धि की मेरी गलाका के अरण्यतम नग्न जलत तेज  
 कम के चिर वेग में उर वेग के उभय ।

पित मन की स्नेह सीमा का जहा है जन्त,  
 छलछल मात उर के क्षम-गान के परे जो लोक,  
 पत्नी के समपण दश की गाघलि गच्छा के भित्तिज के पार,  
 जो विस्तृत बिछा है प्रात  
 तमय तिमिर छाया है जहा हिल डाल स भी दूर,  
 है केवल अकला याम ऊपर श्याम  
 नीचे तिमिरगामी अचल धरती भी अकली एक  
 तर के तल भी केवल अकला मौन  
 जिसकी दोष गाखाए मिछी निस्सग  
 जस लटकती है एक स्मृति पहचान मन के  
 तिमिर कोने में त्यजित,

पत्त भी खड़े चुपचाप सीने तान —  
 अपनी यवित्तमता के सहारे जो चल है प्राण,  
 उनको कौन दता है  
 जचल विश्वास का वरदान !  
 उनको कौन देता है प्रसर आलोक  
 खुद ही जल  
 कि जस सूय !  
 अपन ही हृदय के रक्त की ऊपा

पथिक के क्षितिज पर विछ जाय,  
जिससे यह अकेला प्रांत भी नि भीम परिचय की मधुर  
संवेदना से

आत्मवत् हो जाय  
ऐसी जिस मनस्वी की मनीषा,  
वह हमारा मित्र है  
माता पिता-पत्नी मुह्रद पीछे रहे हैं छूट  
उन सबके अकेले अग्र म जो चल रहा है  
ज्वलत् तारक-सा,  
वही तो आत्मा का मित्र है ।  
मेरे हृदय का चित्र है ।

■

## दूर तारा

तीव्र गति  
अति दूर तारा  
वह हमारा  
शून्य के विस्तार नील म चला है ।

और नीचे लोग  
उसको देखते हैं, नापते हैं गति उदय औ अस्त का  
इतिहास ।

किन्तु इतनी दीर्घ दूरी,  
शून्य के उस कुछ-न होने से बना जो नील का आकाश  
वह एक उत्तर  
दूरबीना की सतत आलोचनाओं को,  
नयन-आवत के सीमित निदर्शन या कि दर्शन-यत्न को ।  
वे नापते बाल लिखें उसके उदय औ अस्त को गाथा,  
सदा ही ग्रहण का विवरण ।  
किन्तु वह तो चला जाता  
ध्योम का राही,  
भले ही दृष्टि के बाहर रहे—उसका विषय ही  
बना जाता ।

और जाने क्यों,  
मुझे लगता कि ऐसा ही अकेला नील तारा,  
तीव्र-गति  
जो शून्य म निस्संग

जिसका पथ विराट्—  
 वह छिपा प्रत्येक उर म,  
 प्रति हृदय के कत्मपा के बाद  
 जैसे बादलो के बाद भी है शूय नीलाकाश ।  
 उसम भागता है एक तारा,  
 जो कि अपने ही प्रगति पथ का सहारा,  
 जो कि अपना ही स्वयं बन चला चित्र,  
 भीतिहीन विराट पुत्र ।  
 इसलिए प्रत्येक मनु के पुत्र पर विश्वास करना चाहता हू ।



## खोल आँखें

जिस देग प्राणो की जलन म  
एक नूतन स्वप्न का सचार हो,  
जो हृदय मेरे उस ज्वलन की भूमि म बिछ जा स्वय ही,  
औ तडप कर उस निराल देग म तू खोल आँखें ।  
देख—जलन म्पदनो म क्या उलवता ही गया है,  
जो नयो चिगागरियाँ  
नव स्वप्न का आलोक ले  
उत्पन्न होती जा रही हैं  
उन सबलतम, तीव्र, कोमल देश की  
चिनगारिया म  
जो खिले हैं स्वप्न रचितम,  
देख ल जी भर उहे तू ।  
उस असीम विकल रस को पी स्वय भी ।  
वह महा 'याकुल अनावृत ज्ञान लिप्सा  
रख रही निज म अनावृत एक सपना—  
सहस्रो स्वर्गीय स्वप्ना स वहत्तर  
स्वप्न का वह व्योम नीला  
प्राण पथ्वी पर झुका है ।  
उस महा 'याकुल अनावृत ज्ञानलिप्सा  
के क्षितिज पर  
जो खिचा है स्वप्न—  
श्रावण-साँझ के वितरित घनो पर  
अमिन नीला जामुनी, अति लाल मुद्गर

दिवस की वरसात को सूर्यास्त का चुम्बन  
कि ऐसा अद्वितीय  
मधुरतम  
आश्चर्यमय ।

वह ज्ञान लिप्सा क्षितिज सपना  
रे, वही तुझमें अनेका स्वप्न देगा ।  
औ' अनेका सत्य के दिग्गु  
नव हृदय के गभ में द्रुत  
आ चलेंगे ।

आत्मा मेरी—

उस ज्वलन की भूमि में तू स्वयं विछल  
देख, जलते स्पन्दना में क्या उलझता ही गया है ।





## अशक्त

क्या हमारे भाव शब्दातीत हैं ?  
या तुम्हारा रूप भावातीत है ?  
हम न गा सकते तुम्हारा गीत है  
वह हृदय गम्भीर, नीरव सिसित है ।

यह विशद जीवन कि जो आकाश सा  
या कि निज्ञर सा चपल लघु तीव्र है  
क्या पूण है ? क्या तृप्ति पाता शोघ्र है  
वह ग्रीष्म सा है या मंदिर मधुमास सा ?

हम लिख कविता विरह पर दुःख पर  
या मधुर आराधना पर, युद्ध पर  
या रच विज्ञान जीवन के बने—  
प्रानमय जो अग सतत क्रुद्ध पर ?

खीच लें हम चित्र जीवन म बहे  
रम्य मिश्रित रग धारा के नवल  
चकित हो लें उल्लसित हो लें कभी  
दुःख ढा लें तत्त्व चिन्ता कर सकल ।

किन्तु यह सब तो सतह की चोज है,  
भार बन मेरे हृदय पर छा रही ।  
या कि वहत सरित के ऊपर तह  
वफ की जमती चली ही जा रही ।

पाय है प्यासा, थका-सा घूप म  
पीठ पर है नान को गठरी बटी,  
बुक् रही है पीठ, बढ़ता बाज है  
यह रही बेगार की यात्रा कडी ।

अथ खोजी प्राण ये उद्दाम है,  
अथ क्या / य प्रश्न जीवन का अमर ।  
क्या तपा मरी बुझेगी डम तरह ?  
अथ क्या ? ललकार मेरा है प्रखर ।

जब कि ऐसा नान मर प्राण म  
तपि मधु उत्पन्न करता ही नहीं,  
जब कि जीवन म मधुर सम्पन्नता,  
साजगी, विश्वास आता ही नहीं,

जब कि गमावुठ तपित मन खोजता  
बाहरी मरु म अमल जल-मून है,  
क्या न विद्राही बनें य प्राण जा  
सतत अवेपी सदा प्रद्योत हैं ?

जब कि अंदर खाश्वलापन कीट-मा  
है सतत घर घर रहा आराम म,  
क्या न जीवन का बहद् अश्वत्य यह  
डर चले तूफान के ही नाम से ।



## मेरे अन्तर

मेरे अन्तर, मर जीवन के सरल यान,  
 तू जवसे चला रहा वेधर,  
 तन गह म हो पर मन बाहर  
 आलोक तिमिर मरिता पवत कर रहा पार ।  
 वह सहज उठा ल चला सुदृढ तपन जीवन का महा ज्वार,  
 उसके द्रुत गति प्रति पदश्रप स अमृत हा उठ रहा गान,  
 जो नय तज का भव्य भान ।  
 घर की स्नेहल कोमल छाया म रहा महा चचल अधीर ।  
 व मदुल थपकिया स्नेह भरी  
 व गशि मुसकानें गुभवरी  
 सबको पाया, मवको थला पर स्वय अकेला बढा धीर ।  
 जीवन-तम का सगीत मधुर करता उर सरि का वय नोर  
 ऐसा प्रमत्त जिमका गरीर उमत्त प्राण मन विगत पीर ॥

यह नही कि वह था तुग पुष्प  
 जा स्वय पूण गत दु स हप  
 पर ल उसके घन ज्यातिष्कण जो बटा माग पर अति अजान ।  
 उसके पथ पर पहरा दत ईसा महान् व स्नेहवान् ।  
 छाया बनकर फिरते रहते व शुद्ध बुद्ध सम्बुद्ध प्राण ॥  
 यह नही कि करता गया पुण्य  
 उसका अन्तर था सरल वय  
 तम म घुसकर चक्कर खाकर बट करता गया अबाध पाप ।  
 अपनी अक्षमता म लिपटी यह मुक्ति हा गयी स्वय शाप ।

पर उसके मन में बैठा वह ओ ममथीता कर मका नहीं,  
जो हार गया, यद्यपि अपने में लडन-लडत थका नहीं,  
उमने ईश्वर-अहार किया, पर निज ईश्वर पर स्नेह किया ।  
स्फुग्णा के लिए स्वयं को ही नव स्फूर्ति मोलका ध्येय किया  
वह आज पुन ज्योतिक्षण हित  
घन पर अद्विरत करती प्रहार,

उठने स्फूर्तिग

गिरते स्फूर्तिग

उन ज्योति क्षणा में दम्भ लिया

करता वह मय महदाकार ।

सतद्व हुआ वह ज्वाला विद्ध करने को सारा तम प्रसार,

वह जन है जिसके उच्च भाल पर

विश्व भार औ' अन्तर में

नि सोम प्यार ॥

## मृत्यु और कवि

घनी रात बादल रिमझिम हैं लिशा मूक निम्न वनांतर  
 व्यापक अधकार म मित्रुडो सोयी नर की वस्ती, भयकर  
 है निस्तब्ध गगन रातो सी सरिता धार चली घहराती  
 जीवन लीला को समाप्त कर मरण मज पर है कोई नर ।  
 बहुत सबुचित छाटा घर है दोपालाकित फिर भी धुधला,  
 बधू मूर्च्छिता, पिता अद्ध मत दुखिता माता स्पन्दन हीना ।  
 घनी रात, बादल रिमझिम ह, दिगा मूक, कवि का मन गोला ।  
 ' यह सब क्षणिक क्षणिक जीवन है मानव जीवन है

क्षण भगुर

ऐसा मत कह मेरे कवि इस क्षण सवेदन से हो आतुर  
 जीवन चिन्तन म निणय पर अकस्मात् मत आ, ओ निमल ।  
 इस बीभत्स प्रसंग म रहो तुम जत्यन्त स्वतन्त्र निराकुल  
 भ्रष्ट न होने दो युग युग की सतत साधना महाराधना,  
 इस क्षण भर के दुख भार से रहा अविचलित, रहो अचचल ।  
 अतर्दीपक के प्रकाश म विनत प्रणत जात्मस्थ रहो तुम  
 जीवन के इस गहन अतल के लिए मृत्यु का अथ कहो तुम ।

क्षण भगुरता के इस क्षण म जीवन की गति, जीवन का स्वर  
 दो सौ वर्ष आयु यदि होती तो क्या अधिक सुखी होता नर ?  
 इसी अमर धारा के आगे बहने के हित यह सब नश्वर,  
 सजनगील जीवन के स्वर म गाओ मरण गीत तुम सुन्दर ।  
 तुम कवि हो य फल चल मद्दु गीत निरल मानव के घर घर  
 ज्योतिष हा मुख नव आगास जावन की गति जीवन का स्वर ।



## नूतन अह

कर सकी घृणा  
क्या इतना  
रखने हा अखण्ड तुम प्रेम ?  
जितनी अखण्ड हो सके घृणा  
उतना प्रचण्ड  
रखते क्या जीवन का व्रत-नेम ?  
प्रेम करोगे सतत ? कि जिसमे  
उसमे उठ ऊपर वह लो  
ज्यो जल पृथ्वी के अन्तरग  
म धूम निकल क्षरता निमल वैसे तुम ऊपर उह लो ?  
क्या रखते अन्तर में तुम इतनी ग्लानि  
कि जिससे मरने और मारने को रह गे तुम तत्पर ?  
क्या कभी उदासी गहिर रही  
सपना पर, जीवन पर छापी  
जो पहना दे एकाकीपन का लौह वस्त्र, आत्मा के तन पर ?  
है स्वत्म हो चुका स्नेह-व्योप सत्र तेरा  
जो रखता था मन म कुछ गीलापन  
और रिक्त हो चुका सब रोप  
जो चिर विरोध में रखता था आत्मा म गर्मी, महज भयता  
मधुर आत्म विवास ।  
है सूख चुकी वह ग्लानि  
जो आत्मा का बैचैन किये रखती थी अहोरात्र  
कि जिसमे देह सग अस्थिर थी, आँखें लाल, भाल पर

तीन उग्र रखाएँ अरि के उर म तीन शलाकाएँ सुतीक्षण,  
 किन्तु आज लघु स्वार्थो म धुल, ऋदन विह्वल,  
 अन्तमन यह टार रोड के अदर नीचे बहने वाली गटरा से भी  
 है अस्वच्छ अधिक,  
 यह तेरी लघु विजय और लघु हार ।  
 तेरी इस दयनीय दशा का लघुतामय ससार  
 अहभाव उत्तुंग हुआ है तेरे मन मे  
 जैसे धूरे पर उट्टा है  
 घृष्ट कुकुरमुत्ता उमत्त ।



## विहार

रवि का प्रकाश,  
शशि का विकास—  
पुसत्वहीन नर का विलास ।  
ये सूर्य-चंद्र,  
नभ-वक्ष लुब्ध,  
व अमित वासना के शिकार ।  
वे गगन दीन  
वे रसिक रुग्ण,  
पुसत्वहीन वेश्या विहार ।  
इनका प्रकाश  
जग के विशाल  
दाव का सफे परिधान साफ ।  
है त्यक्त गेह  
आत्मा अदेह  
उड चली गटर स बनी साफ ।

[ २ ]

दिन के बुखार  
रात्रि की मृत्यु  
के बाद हृदय पुसत्वहीन,  
अन्तमनुष्य  
रिक्त-सा गेह  
दो लालटेन-से नयन दीन,  
निष्प्राण स्तम्भ



दो खड़े पाँव  
 लकड़ी का लोखा वक्ष रिक्त,  
 मस्तिष्क तेल  
 की है मशीन  
 ससार क्षेत्र है तल सिक्त ।  
 दिन के बुखार  
 रात्रि की मृत्यु  
 कं घाद हृदय दुःख का नरक  
 रात्रि के शून्य  
 दो देह युक्त—  
 दो रिक्त प्राण व्यग्य भगव ।

■

## पूँजीवादी समाज के प्रति

इतने प्राण, इतन हाथ, इतनी बुद्धि,  
 इतना ज्ञान, सस्कृति और अत गुद्धि  
 इतना दिव्य, इतना भय्य, इतनी शक्ति  
 यह सौंदर्य, वह वैचित्र्य, ईश्वर भक्ति,  
 इतना काव्य, इतन शब्द इतने छन्द—  
 जितना दोग, जितना भोग है निवृत्त,  
 इतना गूढ, इतना गाढ, सुंदर जाल—  
 केवल एक जलता सय दन टाल ।  
 छोटा हाथ, कवल घृणा औ दुःख  
 तेरी रेशमी वह शब्द-सस्कृति अथ  
 दतो क्रोध मुझका, खूब जलता प्राण  
 तरे रक्त म भी सय का अवरान  
 तर रक्त स भी घृणा आता तीव्र  
 तुझको दक्ष मितनी उमह आती गान  
 तर हास म भी राग-कृमि है उग्र  
 तरा नास तुझ पर क्रुद्ध, तुझ पर व्यग्र ।  
 मेरी ज्वाल, जन की ज्वाल होकर एक  
 अपनी उष्णता से धो चलें अविवेक  
 तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यथ  
 तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अथ ।

## नाश देवता

घोर धनुधर, बाण तुम्हारा सभ प्राणा को पार करेगा,  
तेरो प्रत्यंबा का कम्पन सूनेपन का भार हरगा ।  
हिमवत् जड निस्पन्द हृदय के अधकार में जीवन भय है ।  
तेर तीक्ष्ण बाण की नोका पर जीवन-संचार करेगा ।

तेरे क्रुद्ध वचन बाणा की गति से अंतर में उतरेंगे  
तेर क्षुब्ध हृदय के शोल उर को पीडा में ठहरगा ।  
कोपित तरा अधर सस्फुरण उर में होगा जीवन-वदन  
रुष्ट दृगा की चमक बनेगी आत्म-ज्याति की किरण सचेतन ।

सभी उरो के अधकार में एक सदित् वदना उठगी  
तभी सजन की बीज वद्धि हित जडावरण की मही फटेगी ।  
गत शत बाणो से घायल हो बढा चलगा जीवन-अकुर ।  
दशन की चेतन किरणा के द्वारा काली अमा हटेगी ।

हे रहस्यमय, ध्वस महाप्रभु जो जीवन के तेज सनातन,  
तेरे आग्निक्णो से जावन तीक्ष्ण बाण से नूतन सजन ।  
हम घुटने पर नाग-दवता । बठ तुझ करते हैं वदन,  
मेर सिरपर एक पैर रख नाप तीन जग तू असीम बन ।



## सृजन क्षण

जो कि तुम्हारे गत बने हैं अक्षमता के,  
उन पर लहराकर भरता मैं एक अबना ।  
वही गभीर अतल होते हैं,  
वे ही सदा अमल होते हैं,  
फिर जाती जिन पर बया सी मेरी प्रना ।

जब कि स्वयं में सुन बना हूँ  
अज्ञा का अंतर पाकर ही,  
सदा रहूँ उनका चाकर ही  
वे कि जिन्होंने आत्मरक्त से मुझको सीचा ।  
वैसे हूँस सकता हूँ मैं उन पर ही ।

उनकी मर्यादाएँ पाकर  
दरिया अमर्याद लहराया,  
अपने स्वर मे स्वरातीत गीता दुलराता  
मैंने अरे उसीको पाया ।

व अपूर्णताएँ, ईर्ष्याएँ  
मुझमें घुलकर घुलकर बनती सूय सनातन,  
यह छिछलापन लघु अन्तर का  
क्षण क्षण नूतन को करता है शीघ्र पुरातन ।  
यों नूतन की विजय चिर-तन,  
महामरण पर महाजन्म का उदय छिप्रतर,  
महाभयंकर से बहता है परम गुभकर ।  
जो सण्डित औ' भग्न रहे हैं,

वे अखण्ड देवता उही के

मुझम आकर मग्न हुए हैं ।

ये आंसू ये चित्ता के क्षण

मुझम आकर, पा परिवतन

जग के सम्मुख नग्न हुए हैं ।

ओ रे भग्न नग्न मलिनो के

खण्डित उग्र विक्ल के सागर,

ओ कुरूप वीभत्स सनातन

की प्रतिनिधि प्रतिभा के आगर

अरे अशिव बौने मस्तक के

चिरविद्रूप स्वप्न आत्मा तक

अरे अमगल हास, घृणित आनन्द,

मरण के सदा उपासक,

भय मत खाओ, अरे पिशाचो

जब कि सत्य तुम बने हुए हो ।

अधकार में, किसी आड में,

किसी झाड की छाया में तुम

क्या छिपते हो ? अरे भयकर

व्रण-से जग की काया में तुम ।

मैं स्वागत करता हूँ सब का

क्योकि प्रकृति से सूर्य-सत्य हूँ ।

और जब कि तुम भय तने हो

मुझम जलते स्वर्ण बनोगे

ज्वालाओ का नग्न नृत्य हूँ,

नभ की पृष्ठभूमि पर मेरो ज्वाला की छाया फिरती है

काल झुलसता है, मुझसे सब तस्वीरें बनती गिरती हैं ।

पर यह कैसे ? जब कि तुम्हारे

लिए बना हूँ मैं प्रखर प्रभ

मेरे स्वर्ण-स्पर्श से आकुल  
 होता है अपार जीवन नभ ।  
 मे उत्साह अनंत, और तुम क्या उदास अति अक्षम ?  
 मेरी ममता हो जाती है पर कठोर औ' निमम ।  
 गवशील मुझको मत समझो,  
 किंतु भार गुरु पाकर मैं भी  
 निज नयनो म हुआ भय हूँ उत्साहित हूँ ।  
 यह उत्साह सफ़द ज्वाल है  
 जो कि कल्प का महाकाल है,  
 इसम पडकर तुम भी श्वेत बनोगे तपकर ।  
 नाप कौन पायेगा तुमको  
 आओगे जब इससे नपकर ।  
 मैं केवल तुम पर जीवित हूँ  
 मेरी सास, किंतु तेरा तन,  
 मेरी आस और तेरा मन,  
 तू है हृदय और मैं लोचन  
 म हूँ पूण, अपूण झेल कर ।  
 मैं अखण्ड, खण्डित प्रतिभा पर ।  
 मैं मैली आँखा के अन्दर ज्योति गुप्त हूँ ।  
 मैं मेल अन्तर के तल म  
 घन सुपुप्त आत्मा प्रतप्त हूँ ।  
 मैं हूँ नम्र धूलि के कण-सा  
 मैं अजस पृथ्वी के मन-सा,  
 घन मृत्कण म सृजन-क्षण मैं,  
 मलिना म रह अग्नि बिंदु हूँ,  
 जीवन की सौन्दर्य शान्ति म  
 नभोविहारी गरद इंदु हूँ ।

गुभ्राण किरणा से विम्बित  
रजत नील सर उत्कट उज्ज्वल  
जिसम अनलोमिल, अनिलोमिल  
कमल खिले हैं वे रक्नोत्पल ।  
मनामूर्ति यह चिरप्रतीक है  
ध्येय धष्ट उर की ज्वालामय ।  
मेरी प्रज्ञा का सृजन क्षण  
ऐसा ऋण गुभकर तमय ।



## अन्तदर्शन

मैं अपने से ही सम्मोहित, मन मेरा डूबा निज मे ही ।  
 मेरा ज्ञान उठा निज म मे, माग निकाला अपने स ही ॥  
 मैं अपने मे ही जब खोया तो अपने से ही कुछ पाया ।  
 निज का उदासीन विश्लेषण आखो म आसू भर लाया ॥  
 मेरा जग से द्रोह हुआ पर मैं अपने से ही विद्रोही ।  
 गहरे अस-तोष की ज्वाला सुलग जलाती है मुझको ही ॥  
 आत्मवचना पीडित मेरा तिमिर मगन उर विम्बित मुख पर ।  
 सिहर उठा मैं अश्रु-मलिन मुख, अपने अतर क दशन कर ॥  
 मैंने मरण चिन्तना की, जब जीवन का था दद बढ चला ।  
 मानवता का कटु आलोचक अपने को ही दण्ड द चला ॥  
 मेरा मन गलता निज म जत्र अपने से ही हार खा चुका ।  
 दारुण श्मोभ अग्नि म अपना प्रायश्चित्त प्रमाद पा चुका ॥  
 रक्त-स्रोत अतर से फूटा लाल-लाल फव्वारा दुख का ।  
 आत्म-दाहकी ज्वलित पिपासाके युग म आया क्षण सुख का ॥  
 रक्त-स्रोत अतर से फूटा, मेरा गात शिथिल हिम शीतल ।  
 मैंने साक्षात् मृत्यु देख ली एक रात सपने म उज्ज्वल ॥  
 मैंने यह जब कहा किसी से ता कहलाया अपना सूनी ।  
 जीवन-दाह-शांति हित किसकी गाद अपक्षित ऊनी-ऊनी ॥





## आत्म स वाद

[ यह एक नाटकाय आरम्भ-वाक्य है जिसमें प्रकाशम बालनक वाक्य काष्ठकाम नहा है । जो काष्ठकाम है व यथाय आमम्बावृत्तिर्वाह और जा उमक बाहर है व उसक यथाय रानलाइरान है । बाट्टरा त्रिगामे य रानलाइरान कामम आत है किन्तु कुछ शकाम मनका यथाय जवत्त्या एकाएक लिच आती है । तव इन दानाका विराघ मनम विप्र-रूप-सा सामन जाता है । उमीका नाटकीय दगम पग विदा गया है । ]

आज छदो म उमडती आ रही है बात  
जा कि सादे गद्य म खुलती रहा  
जा कि साधारण सडक चलती रहा  
आज छाती म घुमडती आ रही है बात  
रास्ता है पर ह औ धैय चलता जा रहा है  
(किन्तु उर म क्या उदासी शाप सी  
प्रत्यक चेर पर लिपो जो राख सो)  
प्राण है औ बुद्धि का भी काय चलता जा रहा है  
वक्ष है, बल है हृदय म ओज भी तो कम नहीं है  
(कि तु उर म अश्रु हैं अति म्लान भी  
विवशता का है सहज अनुमान भी)  
स्नेह है आदग है, औ तेज भी तो कम नहीं है  
तक है औ तक का राक्षस हमारे बाहु म है ।  
(किन्तु चिंता गुनगुनाती असगुनी  
मौन ल बठी व्यथा बनकर मुनी)  
चन्द्र का माधुय उर क राहु म है ।  
चुप रहा तुम तौर-सा आगे चला जाता सदा में ।  
(भुनभुनाता यह हृदय चुपचाप है,

गुनगुनाता जो मनुज का शाप है)  
 निहारा सा मैं चपल बहता चला गाता सदा म ।  
 मूर्ति में भव्योच्च, मद्गु-गम्भीर, तमय, पूजनीया  
 (किंतु उर है हिम कठिन नि सज्ज भी  
 हृदय म शका भरो है अज्ञ सो)  
 सत्य की व्याख्या स्वयं हूँ ॥ (जो सदा है शोधनीया)  
 सफल हूँ (पथभ्रष्ट हूँ) अविजय हूँ (आघोन हूँ म)  
 हृदय मे घुन सा लगा रहता  
 (पाप यह दारुण जगा रहता)  
 मैं महाशोधक महाशय सत्य जल का मीन हूँ म  
 सत्य का मैं ईश औ मैं स्वप्न का हूँ परम सष्टा  
 (किंतु सपने ? प्राण की है बुरी हालत  
 और जजर दह , यह है खरी हालत)  
 उग्र द्रष्टा मैं स्वयं हूँ जब कि दुनिया माग भ्रष्टा ।



## व्यक्तित्व और खंडहर

[व्यक्तित्व किन्हा भी कारणामि विकृद्धित हा परन्तु उमक लिए पुकार अवचतनसे जा कि जीवन गतिका रूप ह निकट सम्बन्ध रखती ह । वह समग्रताकी जोर मनस्मगठनकी ओरका प्रयत्न केवल बुद्धिगत ही नहा गुड जीवनगत ह । परन्तु यह विवेकीकरण अतर्भाह्य विराध परिस्फिति विरोध आत्मविरोधा क द्वारा गुरु हाता ह ।

यह विवेद्धित व्यक्तित्व मानी व्यक्तित्वका खडहर किसी अबूझ समयमें अपन गत बभवपग रा उटना ह । उसीका कल्पनात्मक चित्रण निम्न कविता ह । ]

खडहरो के मूक औ निस्पन्द से

उमडे अकेल गीत ।

ये भूत से निर्देह भयकर

बेचन काले व्यथित आतुर

तिमिर नूपुर के अकल स्वर,

उमडे अकेल गीत ।

हुए चंचल भयद श्यामल

भूत सम आकुल अकेल गीत

रात म जब छा चुका खंडहर तिमिर म

तिमिर खडहर म,

धूमते उस कापती-सी वायु के स्वर म

अकेल गीत ।

तम आवरण में लुप्त झरती धार के तट पर

रागिनी म म्लान तन-मन वरण रोदन गीत

भर चला जाता विपिन के पात पुष्पा म प्रकम्पन

शिथिल उर गम्भीर सिहरन ।

ये अकेले गीत

दब चुकी जो मर चुकी है आत्मा,  
खत्म जो हो ही गयी आकाशा,  
व्यक्ति म व्यक्तित्व के खँडहर  
गान कर उठने उमी के गीत ।

ये अकेले गीत, स्वरलयहीन गीत  
मीन से बेचैन, लोचन-हीन गीत ।

शीत रजनी काँप उठती

भर विजन के गीत, खँडहर गीत  
ये अकेले गीत, पत्थर गीत, हिम के गीत  
अधी गुफा के गीत ।

बेचैन भूतो से, व्यथित के स्वप्न से वे गीत ।  
वे दुष्ट औ' दयनीय गीत,  
कमजोर औ' कमनीय गीत,

उमाद की तृष्णा सरीखे गीत ।

स्वप्न की विक्षुब्ध सरिता के भयानक गीत ।  
निशि के अकेले औ' अचानक गीत ।

विपिन औ' निचर,

तिमिर के घन आवरण म, भावना के इस मरण में  
हैं हुए भय स्तब्ध, तन निस्पन्द, दिगू ख-हीन  
क्योंकि आलोकित हुआ विक्षुब्ध गीतो का महा तूफान,  
ले तीक्ष्ण स्वर-सागर-उफान ।

तम गूँथ म नभ के प्रवाहित हा चला भूचाल-सा यह गान  
इस शीत स्वर के

षष्टदायी स्पन्-शर निचर प्रखर से

हुआ आप्लावित मदित धन का सतत कमजोर प्रातर प्राण

दब चुपा जा, नर पुपा ह जाना,  
खत्म जो हो गयी, आकाशा ।

आज चढ बठी अचानक भूत सी इस कापत नर पर  
विक्षु न कम्पन बन चढी जाती सरल स्वर पर  
प्रश्न लकर कठिन उत्तर साथ लकर  
रात के सिर पर चढी है, नाश का यह गीत बनकर ।  
हस पडगो क न सहज प्रकाश का यह गीत बनकर ।



## में उनका ही होता

में उनका ही होता, जिनसे मैंने रूप भाव पाये हैं ।  
वे मेरे ही हिस्से बंधे हैं जो मर्यादाएँ लाये हैं ।

मेरे शब्द, भाव उनके हैं,  
मेरे पैर और पथ मेरा,  
मेरा अन्त और अर्थ मेरा,  
ऐसे कि तु चाव उनके हैं ।

में ऊँचा होता चलता हूँ  
उनके ओछेपन से गिर गिर,  
उनके-छिछलेपन से खुद-खुद,  
में गहरा होता चलता हूँ ।

हे महान् !

हे महान् ! तव विस्तृत उर से  
दृढ परिरम्भण की क्षमता दो,  
तव स्नेहाण्ण हृदय का स्पन्दन  
मुन पाने की आयुलता दो ।  
जिमम त्रिवग रहस्य खोल दे  
सत्य कि विद्युन् विह्वलता दा ।  
जो तुझसे सघष कर सके  
ऐसी उर म कामलता दो ।  
तुझसे कर सघष, स्पग से  
तेरे नव चेतनता आये,  
तुयसे करके युद्ध क्रुद्ध हो  
जीवन यह ऊचा उठ जाये ।  
तेरे तन के अणु अणु से तव  
निरावरण हो अतज्वाला,  
एक एक अणु सत्य खोल दे  
ऐसी सतह स्वय चल आये ।  
तेरे उर की मम-ज्वाल का  
मुक्त खोलने की ममता दो,  
हे महान् ! तव विस्तृत उर से  
दृढ परिरम्भण की क्षमता दा

■

## पुनश्च

पिछाँ वास वर्षोंम न मालूम कितनी बातें घटित हुई ह । व सबके सामन ह । मेरी अपना जिल्ला जिन तग मलियाम चक्कर काटती रहा उन्हें दम्ने हुए यही मानना पता ह कि माघारण श्रेणाम रहनेवाल हम लागका अस्तित्व-सघपके प्रयासामें हा समाप्त हाना ह । मरा अपना प्रीय अनुभव बताता ह कि व्यक्ति-स्वातन्त्र्यका वास्तविक स्थिति कब तक बन लिए ह जा उस स्वातन्त्र्यका प्रयाग करनके लिए सुपष्ट आर्थिक अधिकार रखते हा जिस कि व परिवार-महिन मानवाचित जीवन यतात कर सकें और साथ ही व्यक्ति-स्वातन्त्र्यका एमा प्रयाग भी कर सकें जा विवशपूर्ण हा और लक्ष्यामुख हा । अपन जीवनके आर्थिक आधार का दू और सुपष्ट करनके लिए व्यक्तिक व्यवसायाकरणका माग भा सामने आता ह । मर य्मे यह अत्यन्त अनुचित माग ह और कम-म-कम म उस वभा स्वाकार नही कर पाया लेकिन वह माग ता सामने आता हा ह और व्यवसायाकरण-व्यापाराकरणका दबाव ता तीव्रतर हाना जाना ह । सब ता यह ह कि व्यक्तिका मरुची आम-मराक्षा उमका आध्यात्मिक गतिका परीक्षा सबम प्रधान समय, उस इन्तिहानका सबम नाजुक और यहा आजका युग ह ।

जावन और परिवारका विपमनाका यह स्थिति आम्यन्तर लक्षम भा दु स्थिति उत्पन्न करती ह यह एक दायण सत्य ह । म कहू कि यह मरा अपना भा सत्य ह । परिणामन स्वाधानताके इस युगम मरा कविता सघन विम्व-मात्रिकाजामें अधिकाधिक प्रकट हान लयी । अचानक अन्तरमुख बनाए और भा दीप और गहन हानी गया । किन्तु यह भी एक सत्य ह कि इस आमप्रस्तताके बावजूद और गायक उमका माय स्थि स्थि मरा आम-मरदन समाजके व्यापकतर शर घून ग्या । कविताका कवर भी दीपतर हाता गया । परिणामन मेरी कविताए काल्पित मासिक पत्र पत्रिकाजामें प्रकाशनके योग्य भी नही रह गया ।

यही जा नया कविता दा जा रही ह और जा सन् १९६३ की हा



रचना ह अपभासुत छाटी ह । इमन और छाती रचनाएँ सायन म अन  
 क्रिय नहो सकता । भाव प्रकृतियाक समालम यन कविता मरा प्राय  
 सर्वांगीण प्रतिनिधिय करती ह । जसा कि गायकन ही स्नष्ट ह वह मरी  
 इस टिप्पणीका और आग बनाती ह और कनाचिन उमक यान यह निष्पणा  
 मो अनावश्यक हो जाती ह ।

—गजानन मुक्तिबोध

## एक आत्म-वक्तव्य

और, जब  
मेरा सिर दुखने लगता है,  
धुँधले धुँधले अकेले म, आलोचना शील  
अपने म से उठे घुएँ की ही चक्करदार  
सीढिया पर चढ़ने लगता हूँ ।

और हर सीढी पर लुढ़की पढी एक-एक देह  
आलोचन-हृत मेरे पुराने व्यक्तित्व,  
भूतपूर्व, भुगते हुए, अनगिनत 'मैं' ।

उनके शवा, अध शवा पर ही रख कर  
निज सव-स्पश पैर,  
मेरे साथ चलने लगता भावी-कर-बद्ध  
मेरा वतमान ।

किन्तु, पुन पुन ,  
उन्ही सीढिया पर नये-नये आलोचक-नेत्र,  
( तेज नाक वाले तमतमाये-से मित्र )  
खून वाट छाट और गहरी छील-छाल,  
रदा और बसूलो से मेरी देख भाल,  
मेरा अभिनव सगोधन अधिरत  
ब्रभागत ।

अभी तक  
सिर में जो तडफडाता रहा ग्रह्याण्ड,

लसडाती दुनिया का भरा मान चित्र  
चमकता है दद भर अधेरे म वह  
क्रमागत काण्ड ।

उसम नये-नये सवाला की धखमार,  
थके हुए गिरते पडते, बढने का दौर,  
मार काट करती हुई सन्या की चोख,  
मुठभेड करत हुए स्वार्थों क बीच  
भोल भाल लागा के माथा पर घाव ।

कुचल गये इरादो क बाकी बचे घड  
अधक्टे परा हो से लात मार कर  
अपने जस दूसरे के लिए

सम करते हैं दरवाजे बंद—

उलटे दिल दिमागा म गुस्स की धु ध ।

अधियाली गलियो म घूमता है,

तडक ही रोज

कोइ मौत का पठान

मागता है जिदगी जीने का ब्याज,

अनजाना कज

मागता है चुकार म, प्राणो का मास ।

हताहत स्वय को हो दर्दिली रात—

जोड तोड करती हुई गहरो काट छाट,

रोज नयो आफन, काई नयो वारदात ।

पूरे नही हा सके है मानवोय योग

हर एक के पाम अपने अपने गुप्त रोग ।

( परशान चितका की दानिक योख )

उजली उजली सफेदी म

कोखा की शम,

( अधबने समाधानो )

भ्रूणों का, अँधरे में, क्रमागत जन्म,  
 सजन—मात्र उद्गार धम ।  
 सत्ताग्रही, अथाकाक्षी  
 शक्ति के वृत्त,  
 और, मेरे प्राणा में  
 सत्यो के भयानक  
     केवल व्यग्य नृत्य,  
             व्यग्य-नृत्य ॥

उसी विश्व यात्रा में, चट्टानों बीच,  
 किसी क्षुब्ध सँवलायी साँझ  
 मुझे मिला  
 ( हृदय प्रकाश सा ) अकेले में  
 बिजली से जगमगाता घर,  
 जिस के इंद गिद  
 कुछ अँधियाले पेड़  
 मानो सधे हुए, घने  
 बहुते घने, बड़े बड़े दद ।  
 अचानक घर में से निकल आया एक  
 चौड़े माथे वाला, भोला, प्रतिभा का पुत्र  
 दुबला बाल मुख ।  
 पहचाना मुझे, और हँस चुप चाप,  
 मेरे लाली हाथों में रख गया  
 दीप्तिमान रत्न—  
 भयानक वीरानों में घूम कर  
 खोजा था जो सार सत्य  
 आत्म धन  
 छटपटाती किरनों का पारदर्शी क्वाट्रुज,

किरनें कि जालाचनाशील, धारदार

उपादान

जिन की तेज नाका से अस्मत्

मरो काट छाट छील छाल

लगातार ।

इसी लिए, मेरी मूर्ति

अनवनी अवनी अभी तक

जिस लिये कहा जाऊ, सत्ता हो का प्रश्न ।

अपने इस अधवने पने का गरीब

यह दृश्य

पा न जाय, सभाआ म, कही तिरस्कार,

अथहीन समयों के द्वारा कहीं वह

निकाला न जाय ।

इसी लिए मुझे प्रिय अपना अधिकार

गठरी म छिपा रखा निजी रेडियम,

सिर पर, टोकरी मे

छिपाया है मैं ने कोई यीगु,

अपना कोई शिशु ।

परतु मैं किसी पेड-पीछे-से झाक

लाख-लाख आखी से देखता हूँ दृश्य,

पूरे बने हुआ ही के ठाठदार अबस,

ऐसा कुछ ठाठ—

मुने गहरी उचाट,

लगता है व मेरे राष्ट्र के नहीं हैं ।

उचटता ही रहता है दिल

नही ठहरता कही,

जरा भी ।

यही मेरी वुनियादी खराबी ।

और, अब नये-नये मेर मित्र-गण  
मेरे पीछे आये हुए युवा-बाल-जन,  
घरित्रो के धन,  
लाजता हूँ उनम ही  
छटपटाती हुई मेरी ऊह,  
क्या कही बहा मेरा रूपक उपमान,  
छिपी हुई कही कोई गहरी पहचान,  
समशील, समधर्मा कही कोई है ?

अच्छा है कि अटाल म फका गया मैं  
एक प्रेम पत्र,  
कित्तावा मे डाल, बन्द कर दी गयी अरल,  
काली-काली गलिया म  
फिरती हुई आदमी की शकल,  
अच्छा है कि अँधरे मे इलाका-बदर  
मैं हूँ जवाबी गदर,  
जिससे कि और ज्यादा तैयारिया कर  
आज नहीं बल फूट पड़ेगा जरूर,  
जरूर ।

असंग्यक इत्यादि जना वा मैं भाग  
इमीलिए, अनदिने,  
सुनगाता धीरे-मे आग,  
जिमने प्रकाश म, तत्रियाये चेहंग पर आप  
संबदित पान की सांपनी ही

उठती है भाफ नुप चाप  
 सच्चा है जहाँ असतोष,  
 मेरा वहाँ परिपोष ।  
 वहाँ त्रिवाला पर टंगत हैं भिन्न मान चित्र,  
 चिनगियाँ वरगाते  
 लगातार विचारा व मत्र,  
 मेरे पात्र चरित्रा की  
 आँगा की अंगारी ज्योति  
 ललक कर पड़ती है मेरा प्रेम-पत्र ।  
 बाँपता है वग मूल अय भरा  
 त्रैराशिकी कोई स्मित स्निग्ध ।  
 ययार्थों से चला हुआ  
 स्वर्गों तक पहुँचता है  
 गणितों का बिरणीला सेतु  
 पृथ्वी के हेतु ।  
 लकिन हाँ, उसी के लिए दिन रात  
 नये नये रदो और बसूलो से  
 लगातार लगातार  
 मेरी काट छाँट  
 उनकी छील छाल अनिवार ।  
 ऐसी उन भयानक क्रियाओ मे रम  
 कटे पिटे चेहरो के दागदार हम  
 बनाते हैं अपना कोई अलग त्रिक काल,  
 पथक आत्म देश—  
 दृष्टि आवेश !  
 क्षमा करें, अय मति  
 अय मुख मेरे परिजन ॥



भारतभूषण अग्रवाल





[ अग्रवाल, भारतभूषण जन्म अगस्त १९१९ में मयूरामें गिना मयूरा, चण्डीनी और आगरामें पाया। सन् १९४१ में एम० ए० पास किया। सन् १९४२ में विवाह हुआ। सन् १९४१ में अचानक कलकत्ते या टपका और तबसे इस महानगरके विंगाल जालमें फसा हूँ—नौकरके चक्करमें।

कविता कहाना नाटक व्यंग्य लिखन ह। प्रकाशित रचनाआम दा कविता-संग्रह और एक एकाक ह। 'तुक्क चमकारन मुझे कविताका आर आकर्षित किया और गुल्म गुणा भागकी तरह कविता लिखा—गिन गिन कर। इसके बाद भा लिखन रहे इस साहबनका असर बनात ह जा कि अर्धदूर हाता जा रहा ह।

'गौड़' दा ही चाजाका—मिनमा और मिगरट। आजकल राजनाति या अध्ययन अठा लगता ह। माक्यवादाका आजक समाजक लिए रामबाण मानता हूँ। कम्युनिस्ट हूँ।'

१९४३—

अब कम्युनिस्ट नहीं हूँ। यही नहीं अब ता लगता ह कि जब कहता था तब भी नहा था। महानगरके विंगाल जालमें एक फाँक पाकर जा भागा ता हायरसकी तलयामें जा पडा। मिलमें काम उसाम रहता निम मिल-मालिकका हुकुम बजाना और रातमें साम्यवादा साहित्य लिखना-पढ़ना। तान माल मिलका नौकरीके बाद प्रतीक म इलाहाबाद फिर आवागवाणा में। 'कहावनी बारह वष बातनके बाद यहाँसे मुक्ति पाकर साहित्य अकादमाम सहायक मन्त्रा ह।

'लिखनमें साहबनका असर सदा रग लाता रहा। मिलम रहत ब्याह शास्त्रियाके कमीन भी लिख घे, ता रडियाम रहत नाटक और टपक भी। तुक्कका का प्रारम्भ भा मिलमें ही हुआ था। अकादमामें रहत हुए पहला उपमास 'लौकती लहरका बाँसुरी लिखा।

कविता-संग्रह जागते रहा के बाद कलकत्ता छोडा था (१९४५) 'मुक्ति माग के बाद हायरम (१९४८) और 'ओ अग्रस्तुत मन के बाद

आकाशवाणी ( १९६० ) । ' नया कविता-समूह छपात डर रहा है कि कहा  
अकादेमी न छूट जाय । पर कबतक डरुगा ' ( यह समूह भी छप गया  
ह- अनुपस्थित लोग । )

□

स्कूलकी प्रारम्भिक कक्षाओंमें दूसराके पद्याकी कण्ठस्थ कर उनकी आवृत्ति करनेन ही सम्भवत मुझे कविताकी ओर प्रेरित किया और क्योंकि तुक' के कारण कण्ठस्थ करनेमें सुविधा होती थी इसलिए अनजानमें ही तुकको म महत्त्वपूर्ण मानने लग गया। फल यह हुआ कि कुछ ही गिननाम म तुकबन्दा करन लग गया जिनमें जो यूनाधिक भाव होने थे वे सब उधार लाते कियाम मेरा अपना। और गलत तुक या कमजोर तुककी कविताकी रही कविता माननेका मेरी आन्त तो बहुत गिना तक बनी रही।

स्कूलकी मीटिंगोंमें और उत्सव-आयोजनादिमें मुझे पद्य-आवृत्तिका जो यह ढाय करना पडा उसीने मुझसे कविता लिखायी। "यह मेरा लिखी नहीं ह कहते-कहते म इतना तग आ गया कि मेरे अचेतनने निश्चय ही अपनेकी इस गुण-गौरवसे विभूषित करना चाहा। इसीलिए मने प्रारम्भमें केवल सामयिक अवसर स्तौहार-मव आन्विके उपयुक्त कविताएँ ही लिखी। और दूसराकी प्रगताका लोभ ही मेरे काव्यकी आदि प्रेरणा थी। तब कविता लिखनेमें जो तकलीफ मुझे होती थी उसकी कुछ-कुछ इम्तहानमें प्रश्नोत्तर लिखनेकी तक्लीफकी तरह म लेता था जिसका फल मोटा और आनन्ददायक होता ह। मेरी धुन्की इन रचनाओंम जिन्हें आज पढ़नेपर हमी आती ह मधिलीशरण गुप्तकी उपदेशात्मक श्लोका प्रभाव बहुत ह। क्याकि एक ओर उसका अनुकरण जितना आसान ह दूसरी ओर श्रोताओंको अनायास समझना भी उतना ही।

इस प्रकार अग्याम करते-करते तुक और छन्दोंपर वग प्राप्त कर लेनेक बाद जय म; कॉलेजम पहुँचा तभी धीरे धीरे मेरी कविताओंमें अपनी बात आन लगी। दूसराकी चार कविताए पढ़ लेनेके बाद अपनी एक लिख लेनी रीतिको छोड़ अब मैं उन बातोंका कहनेकी क्षमता और साहस पा सका जिन्हें मैं स्वय अनुभव करता था। और फिर एक ओर अपनी अति भावुक प्रकृतिके दूसरी ओर हिन्दी साहित्यमें विगेष

माहके तीसरी आर कवि हानकी अपनी विगपताक गौरव और श्रमक और चौथी आर कवितामें एक अजाब गति पानके कारण मन काफी कविताए लिखी जिनमेंसे अधिकांश निम्नके गिण ही लिखी गयी थी ।

और आज जब मरा काव्य-लेखन काफी कम हो गया है और म कला कलाक लिए की प्रवचताक मूल कारणको समझ पाया है साथ ही उमर उचित उपयोगको भी तब यह बात स्वीकार किय बिना म नहा रह सकता कि मरा यह कविताएँ मर लिए केवल एक पलायन हा नग बरन् एक स्वप्नलाक भी थी जहाँ मन अपनी समस्याआमे भागकर कवड गरण ही नहीं था बरन् साथ हा असामाजिक नकाले यकितत्व-गारा उत्पन्न अपनी असम्भव इच्छाआकी पूर्ति भी दग्यी । इसलिए मुख अपनी कवितापर इतनी मोह-ममता रही और इसलिए म उनको अपना सम्पत्ति मानता रहा ।

आजकी सामाजिक यवस्था और उसकी आगरगत आर्थिक व्यवस्था एक माय-वगक नवयुवकको अप्राकृतिक रूपस महत्वाकांशी और स्वप्ना भिलापी बना देती है कयाकि एक ओर तो वह अपने स्कूल और कालेज में पढाई जानवाली पाठ्य-पस्तकासे अपन-आपको महान यकिन ( इण्डि वि जुअल ) बनान की सोचता है और दूसरी ओर ऊपरक बगकी एवय गालीनता उसे सहज हा आकर्षित करती है । और जो अतिभावुक होता है वह अभिलाषाआका गिकार होकर सौ-दयका भूखा कपनाक लण्ड खानवाग्य रगीन कवि हुए बिना नहीं रह सकता ।

अपन अनुभवमे म इसीलिए यह बात जोर देकर कहना चाहता हूँ कि कम-से-कम मझ मरा कवितान भाषाका उत्थान (सल्लिमेगन) नहीं लिया न उसन मरे हृदयका परिष्कार किया । दूषित समाजने मुझ जो असामाजिक कमजोरियाँ और गलित स्वाय दानमें लिया मेरी कवितान उन्हीकी पीठ टोकी । समाजकी सच्चा मानकर उसमें कम करना कयाकि वास्तविक क्षमता और सामर्थ्यकी अपना रखता है इसीलिए मन कविताए लिखकर मानो स्वप्नमें अपनी अभिलाषाए पूरा कीं और ससारको मिय्या मिद्ध किया । कमसे पलायन हा मरी कविताआका स्पन्दन रहा । यकितत्वक य सार डक जा दूसराको काटन दौडते है, समाजम रहने-सहने से टूट जात है लेकिन इस पलायनका फल यह हुआ कि मन उहीक विषको अमृत समझा । आजका हिन्दी कवि इतना दग्भी अवमण्य और

असामाजिक यकिन क्या होता है यह मुझे अच्छी तरह मालूम हो गया है ।

और इसीलिए यदि कविताका उद्देश्य यकिनकी शकाई और समाजकी व्यवस्थाके बीचके सम्बन्धको स्वर देना और उसको शुभ बनानेमें सहायता करना है तो हिन्दीके कविको समाजसे नाराज होकर भागनकी बजाय समाजकी उस गोपण-सत्तासे लड़ना होगा जिसने उसको बारा स्वप्ना भिलापो और कल्पना विलापो बना छाया है और जिमने उसको अपनी कविताका ही एकमात्र सम्पत्ति माननके भ्रममें डाला है । इस सधपके पथपर-के अपन अनुभववाको यदि वह पद्य-बद्ध करेगा तो पायगा कि उसकी कविता केवल मम-स्पर्शी और सगावन ही नहीं बरन माय ही उसको अधिक पानी और सामाजिक बनानवागे भी है । तब कविता उसके हाथमें एक मूयवान अस्त्रका भाति होगी आजकी तरह अपायिव अस्ति त्वहान फूलाकी सेज नहीं ।

—भारतभूषण अग्रवाल

## अपने कवि से

१

कितनी सकुचित जीण, वृद्धा हो गयी आज कवि की भाषा ।  
 कितने प्रत्यावतन जीवन में चंचल लहरों के समान  
 आये बह गये काल बुदबुद सा उठा मिटा पर परम्परा—  
 अभिभूवन अभा परिवर्तित हुई न परिभाषा  
 रूप की यकिन की । नव विचार, नव ज्ञान रीति,  
 नित नित नवीन जीवन के स्वर पर प्राचीना  
 अब भी है वाणी की वीणा । कुछ अनुभव करते प्राण  
 कि तु अभिव्यक्ति अर्थ ही कुछ देती है उसे गिरा ।  
 इस भाँति आज कवि के अतिशय उत्कट विचार, मुख  
 दुःख प्रतीति  
 रह जात हैं कल्पना मात्र । सब बाधन से दुष्कर बाधन  
 है शब्दों का जो नहीं निकट आने देता कवि एवं उसकी  
 आत्मपूर्ति  
 को जग के भौतिक सत्यो के, छाया के सदृश अथहीना  
 करता है उसकी वाणी को । कैसी विडम्बना ! स्थिर साधन  
 यद्यपि चिर गतिमय साध्य । देवता बदल गये बदली  
 न मूर्ति ।

२

कवि ! तोड़ो अपना गङ्गा जाल जो आज खोखला शून्य हुआ  
 यह है अपने पुरुषों की वभव भागमयी कल्पित वाणी,  
 मन्मत्त विलासिनि । त्याग इस ! बनना है तुझको तो  
 अगुआ

युग का, युग की भूखो, कमजोर हड्डिया का, जिनका पानी है उठा खील, घिर रहा विश्व पर घटाटाप घादल बन कर । वज्र नहीं सकेगा तेरो इस मधु की वशी पर इनका स्वर गजना भरा । सड़ गयी आज यह गिरा अबल, घिस गयी व्यक्ति छवि कनक प्रवाला के जाला म खो बठी यह आत्म शक्ति युग के मानव के सुख-दुख, आशा प्रत्याशा का प्रतिनिधित्व इसके कण्ठ स नहीं सम्भव । यह सदा स्वर्ग-वामिनी रही अप्सरा बनी । जाने दे इसको स्वर्ग, खोज ले आज मही अपनी मिट्टी के पुतला के शब्दा म हो अपना कवित्व, हमको न जरूरत आज देव वाणी की, हम खुद ढालेंगे जीवन की भटठी म भाषा, जो चाहा रूप बना लेंगे ।

३

इस छायामय भाषा ने कर डाला असत्य, अपदाय, हीन, तर लघु जीवन का था जा एकांत सत्य—तेरे विचार म केवल जो था सार—वही तरा प्रेयसि के लिए प्यार । तू भूल गया, अनान ! रूप है मास, रक्त, मत्तिकाधीन शब्दाडम्बर चक्र म भात । अप्सरा बना डाली तूने पोटग-वर्षीया रूपवती वह पढी लिखी लडकी । पागल ! तू सुनता रहा मधुर नूपुर ध्वनि यद्यपि वजती थी चप्पल । तू साचा किया भाव-वाचक है तत्त्व—गूँथ, जिसको छूने की भी चेष्टा है व्यथ । दूर या भाग गया तू जीवन से तू सदा साचता रहा 'मुक्त हो जाऊ जग के बंधन से उड़ कर दिगंत के पार' । सृष्टि का पाया तूने क्षण भंगुर निज दिव्य-दृष्टि से । रे ! तेरी यह भाषा तो है मात्र-मुकुर, उस दगन का जिसने देखा घस जासमान थोथा-नीला, नश्वरता से डर कर जिमने दग्यो न प्रवृत्ति चिर गतिशीला ।



## जीवन धारा

सघन बर्फ की कड़ी पत सी  
एक-एक कर अमित रुढ़िया  
सदिया से जमती जाती हैं  
तह पर तह  
मानव-जीवन पर ।

तह पर तह—  
ये आज ठोस दीवार बनी  
हैं रोक रही जीवन की गति  
मन की उन्नति ।

अवरुद्ध आज जीवन धारा—  
युग-युग से प्रचलित भय निर्मित  
इन अमित रुढ़िया की वारा ने  
बाध लिया मानव का मन,  
जग का जीवन ।

आगे बढ़ने में विफल व्यथ  
असमथ  
आज जग जीवन की सरिता का जल  
हो कर बेकल  
है फोड़ फाड़ निकला बाहर  
दोना कूला के इधर उधर  
रसमय वसुधा के अचल को  
कर के दलदल ।

अवरुद्ध आज जीवन प्रवाह ।

जडता की जजीरा म जकड़ा भीत हृदय  
हिम शीत मृत्यु के क्षुण्ण-स्पर्श से  
आज बना निर्जीव,  
न उसम शक्ति कि कर भी ल वह कुछ चीत्कार-आह !  
सत्र आर आज गतिहीन शक्ति, निष्प्राण मौन,  
अस्वस्थ धरा, अवरुद्ध वायु, निस्तेज गगन  
गँदला, असुद्ध जग का जीवन ।  
जग की रग रग म जमा हुआ हमत शीत,  
पतझार पीत ।  
पर भय क्या है !—अब दर नहीं  
हम अग्नि शिखा प्रज्वलित करेंगे  
जिसके सम्मुख एक बार ही  
गल गल पिघल जायगे सार हिम क प्रस्तर ।  
एक बार फिर  
जीवन पायगा अपनी उमुक्त धार, निरत्र प्रगति  
टूटेंगे गति के पथ म आये रुद्धिग्रस्त मानव के मन के भाव-बन्ध  
फिर से समस्त जग म छायागा नव प्रकाश  
नव-नवोत्सास, नव गीत छन्द ।  
फिर एक बार,  
हिम की धारा को ताड़ फाड़ ।  
अक्षय, प्रशस्त, जीवन धारा  
वसुधा का चौड़ी छाती पर  
सबर,  
अमन्द,  
वह पायेगी मग सरसाती  
बल-बल गाती ।  
फिर भय क्या है !—अब दर नहीं  
हम लाते हैं वह वह्नि-तज

जिसके स्फूर्ति की ज्योति बिन्दु से  
मिट जायेगा हेमन्त शीत  
मिट जायेगी इस कडवी जडता की सहाय  
हम देख रहे टक्करी बाध—  
उग रहा पूव में नवालोक अभिनव वसन्त ।  
अब देर नहीं—  
विकसित हाकर जग का शतदल  
खालगा अपनी मुदी जाख ।  
जागति की किरण से ज्योति  
होगा अक्षय जग का प्राण ,  
सौरभ से पूरित त्रि त्रि त्रि ।



## सीमाएँ आत्म स्वीकृति

है श्रांत तन, है क्लान्त मन, मैं आज हूँ निष्प्राण ।

आगे बिठी है राह

जानता हूँ यही है वह पथ कि जिस पर मिल सनेगी मुक्ति  
मेरी और सब की मुक्ति,

जानता हूँ यही है वह पथ कि जिस तब पहुँचने की  
थी हृदय में चाह

जो मैं था अतुल उत्साह ।

फटा करके जो, कमर बस, चल पड़ा था उस दिवस अम्लान  
वचित्तों के स्वत्व-सगर में चढ़ाने एवं निज का दान

सोचता था अब हुआ जीवन सफ़र, अब मिट गया अँधियारा  
छूटे अब हमारे वध

तन के और मन के वध

सोचता था क्षुद्र मन के स्वाथ पर ही था विगत आगर  
मैं था मूढ, मैं था अंध ।

या तोड़ नाते, छोड़ चिन्ता, एक निश्चय की सँभाले टेक  
मैं चला बनने अनेका सैनिका में एक ।

तब नहीं मैं जान पाया था—कठिन है राह यह कितनी,  
तब नहीं मैं जान पाया था—क्षणिक है स्फूर्ति यह इतनी ।

आज है अचरज यही अरथ

उस महा आरम्भ का हा । क्षुद्र ऐसा अन्त ।

दूर है, मजिल अभी मेरी बड़ी ही दूर

किन्तु मैं तो बीच में ही आज थक कर चूर

गिर पड़ा हूँ राह पर ।

जा रहें हैं माथ क वर वीर कम कमर  
किंतु मैं अपन निजी कुट माह म, कुछ मूग आगा म  
इस अपूण अगत मन की स्वाभिलापा म  
अटक करके रह गया हूँ स्वयं अपने जाल म  
बगवान्नी हृदय क कटु व्यूह अति विकराल म  
आज पहली बार मुझको मिल सका है ज्ञान मन की परिधि का  
असहाय सीमाबद्ध अपना गति का ।

गति जा या चाहता है फल जाय विश्व भर की सवनागा  
अपहरण की नाव पर

किंतु सीमा म बंधो, आकुल घिरी पथ-हारिणी बन कर  
फूट पाती है नहीं

ढूढ पाती है नहीं निज राह ।

मानता है—सभी सीमाएँ सदा मन जात

किंतु मन क्या मुक्त है, उस पर नहीं क्या अपर बंधन ?

जन्म जिस परिवार म मैं लिया है

जिस तरह की परिस्थितियों से यहा तक आ सकी है

जिन्दगी की सडक मेरी

घूमती फिरती, अनेका माड पर से काटती चक्कर

उन

परिस्थितिया का पिता है बग और समाज पूँजी का

और, मेरे विकल मन की सभी सीमाएँ

वही स नि सत हुई हैं ।



## मसूरीके प्रति

१

माना असत्य, कानना मात्र परलोक, किंतु री मसूरी !  
 तू सय स्वग इस वमुधा पर । तरे अचल की छाह तल  
 पलने हैं दव-तुत्य नर-गण । विमला की पुरी अये विमल ।  
 कब लाय सवा यह पापी, काला नर-समाज तेरी दूरी ?  
 तेरा पथ है अत्यन्त अगम । विरल ही जन जा पाते हैं  
 स्वर्ण की सीढियों पर चढकर । वह देख उधर, वे आत हैं  
 दो चार कुली—पथवी की हत भागिनि निरीह सतान—  
 अबल कथा पर भार वहन करते । ये ही हैं वे सोपान  
 सचर जिन पर पग धर, वैभव के मत् मे झूम, चढे  
 तुझ तक आया करते हैं तरे वरद पुत्र, तव वन्दनाय  
 तल प्रान्ता की उन्नत यानना से वचकर । कैमे वे चागी  
 के टुकडे ।

जो दुख को अपने परस मात्र से सुख म करते परिवर्तित,  
 जिनका अभाव इन मत्य-लोक के वासी दीना को वशात  
 ररता है रौरव की लूम, जीवन भर ज्वाला म पीडित ।

२

मैंने अपनी आँखा दम है व बादल जो चरणा म  
 आनत, प्रतिपल गीतल करते रहते हैं तेरे प्रागण को  
 जब धुलस रहा होता है निघन जग प्रार्थकर लपटों म,  
 जो तल वे नद-सागर के जत्र के वण-वण का गोपण कर के  
 तुझ पटरानी का करते हैं अभिप्रेर । रम्य रम-वमना उस  
 रमणी-नाण को

मैंने देखा है, जो गाती रहती हैं कल-कल निशर के  
 स्वर में अपना स्वर डुबा, हुलास विलामो म भर भर मस्ता,  
 जब चीखा करती है क्षुधात नीचे मैदाना की वस्ती ।  
 हा, मैंने अपनी आँखो दखा है विभेद यह, यह विरोध  
 जो साधारण घटना है अपनी पूजीवाद प्रणाली की,  
 जो है तेरा आधार-स्तम्भ, जिसका विनाश दो दिन ही की  
 है बात यातना ने जिसकी विश्व को दिया है नया बोध ।  
 आज के मंदिर सुख म, रगीनी मे भूली ओ रो अलका ।  
 कुछ तुझ ध्यान भो है कल का, शोपित दल के उठते बल का ?







## फूटा प्रभात

फूटा प्रभात, फूटा विहान,  
वह चले रश्मि के प्राण विहग के गान, मधुर निवर के स्वर  
झर झर धर झर ।

प्राची का यह अरुणाभ क्षितिज  
मानो अम्बर की सरसो म  
फूला कोई रविम गुलाब रवितम सरसिज ।  
धार धार

लो फल चली आलाक रेख  
धुल गया तिमिर, वह गयी निशा ,  
चहु आर दख  
धुल रही विभा विमलाभ कांति ।  
अब दिशा दिशा  
सम्मित  
विस्मित  
खुल गये द्वार हस रही उपा ।

खुल गये द्वार दग, खुल कण्ठ,  
खुल गये मुकुल ।  
शनदल के शीतल कोपो से निकला मधुकर गुजार लिये  
खुल गय बंध छवि के बंधन ।

जागा जगती के सुप्त बाल ।  
पलका की पखुरियाँ खोलो, खोलो मधुकर के अलस बंध

दृग भर  
समेट तो लो यह श्री, यह कात्ति  
बही आती दिगत से यह छवि की सरिता अमन्द  
झर झर, झर झर ।

फूटा प्रभात, फूटा विहान,  
छूटे दिनकर के शर ज्यो छवि के बह्नि-वाण  
( केशर फूलो के प्रखर बाण )  
आलोकित जिनसे धरा  
प्रस्फुटित पुष्पो के प्रज्वलित दीप,  
लौ भरे सीप ।

फूटी किरणें ज्यों बह्नि वाण, ज्यो ज्योति शल्य,  
तरु-वन म जिनसे लगी आग ।  
लहरो के गोल गाल, चमक्ते ज्या प्रवाल,  
अनुराग-लाल ।



## प्रत्यावर्त्तन

सचमुच मेरे मन म है यह विस्मय अपार :  
 किस भाति लीट कर आ जाती हो बार बार  
 तुम मेरे जीवन म, ओ गीतो की प्रतिमे !  
 म खो खो कर भी पा जाता हू प्रति दिशि म  
 तेरे चरणो की चपल चाप । जब-जब कठोर  
 हाने का निश्चय कर मैं बरबस मुसका कर  
 तुमसे कहता हूँ आज विदा भाखिरो, प्राण ।  
 तुम व्यथाशूय अपने नयनो की सजल कार  
 स जैसे लिख देती हो अपना प्यार अमर  
 तुम जैसे कह देती हो ओ ! मेर अजान ॥  
 यह सब किससे, जिसका है तेरे सपनो पर  
 चिर आधिपत्य ? मे आज समझ पाया हूँ यह  
 जिस सहज भाव से अनायास ही तुम प्रत्यह  
 मुझको करने देती हो अपना मुक्तियास  
 उसम रहता है निहित तुम्हारा अविश्वास  
 मेरी क्षमता पर, मेरे प्राणा के बल पर ।

है आज भरा मेरे मन म सचमुच विस्मय ।  
 क्या तेरा सम्मोहन है इतना ही अटूट ?  
 क्या मेर जो म है इतना ही प्रबल प्रणय ?  
 क्या सचमुच ही तेरी आभा के क्षुद्र बिन्दु  
 म बन्दी है मधु का समुद्र, स्नेह का सिन्धु  
 जो मेरे अनजाने म ही प्राण म फूट  
 लाता है मुझको बहा-बहा तरे तट तक ?

मैं विस्मित हूँ आक्यण का वह लघु अकुर  
 किस भाति अचानक आज बन गया अमरलता  
 आच्छादित कर के प्राणो को ? बतलाओ मेरी निघलता ।  
 किस पावक से जल उठते हैं वे आद्र-पलक  
 जब डूबा रहता है सुधि तम मे अन्त पुर ?  
 किस दैवयोग के मधु विधान सी तुम पथ म  
 चौका देती हो मुझको फिर फिर, दृग भर भर ?  
 रो ! बोलो किस स्वर्गीय गान के मधुमय स्वर  
 ने गूँथ लिया है अनायास लय बना हमे ?



## मिलन

छलक कर आयी न पलका पर विगत पहचान,  
मुस्करा पाया न ओठो पर प्रणय का गान ,  
ज्या जुडा आँख, मुडी तुम, चल पडा मैं मूक—  
इस मिलन स ओर भो पीडित हुए ये प्राण ।



## विदा वेला

पाया सनेह पा मरी न पर तुम जभी विदा रीति का पान  
 पगली ! विठोह की बला म विन मांगे ही प्रीति का दान  
 दो मुख । कहा इस अन्तिम पल म एक वार प्रियतम' घीम  
 पूछो कज लीटोग वसन्त म ? वषा म ? शरद श्री म ?  
 गीत की शवरो म ? मरल । मन रह जाआ नतमुख उदास  
 लाज म दयो । कज जज यह पल हागा अतीत, तब अनायास  
 मुसुरित हागी यह नोरवना वन -यया, वियोगी प्राणा म  
 तज नुम साचोगा वार वार 'वयो आँसू म, मुस्कानो म  
 दुग्ध-मुग्ध की उस अद्वितीय घडो का किया न मैंने अमर ?'  
 प्रिय ।

यह कमज तुम्ह कल्पपाथगी क्या मैं प्रिय को अश्रुपिये  
 नयनो स नहला दिया न, सचित किया न क्यों कुछ  
 आद्वामन  
 इस विरह-बालके लिए हाथ । भर आलिंगन पाकर चुम्बन ।'



## चलते चलते

मैं चाह रहा हूँ गाऊ केवल एक गान आखिरी समय  
पर जो म गीतों की भीड़ लगी  
मैं चाह रहा हूँ, बस, बुझ जायें यही प्राण रुक जाय हृदय  
पर सासों म तेरी प्रीति जगो  
इसलिए मौन ही जाता हूँ स्वीकार करे यह विदा  
आज आखिरी बार ,  
मत समझो मेरी नीरवता को यथा जात  
या मेरा निज पर अनाचार ।  
म आज बिछुड़ कर भी सचमुच ही सुखी हुआ मेरी रानी ।  
इतना विश्वास करो मुझ पर  
मैं सुखी हूँ कि तुमने अपनी नारी-जन-सुलभ चातुरी से  
बिखरा दी मेरी नानानी  
पानी पानी कर के सत्वर  
मैं सुखी हूँ कि इस विदा समय भी नहीं नयन गोल तेरे,  
मैं सुखी हूँ कि तुमने न घटाये कभी अलभ्य स्वप्न मेरे,  
मैं सुखी हूँ कि कर सकी मुझे तुम निर्वासित या अनायास  
मैं सुखी हूँ कि मेरा प्रमात् बन सका नहीं तेरा विलास ।  
मैं सुखी हूँ कि—पर रहने दो तुम बस इतना ही जानो  
मैं हूँ आज सुखी,  
अन्तिम बिछोह दो विदा आज आखिरी बार ओ इन्दुमुखी ।



## प्रत्युप वेला

प्रात की प्रत्युप वला—

रात के घनघोर, काले क्षणा के उपरान्त की यह शान्त वेला  
अभी मीठी नीद को सुधि शप है मेरे दृगा म  
और सपना का मधुरिमा से रंगा है फूल-सा मन  
सहज, हलका ।

कवि प्रिया का सलज अचल ज्या बिछा है प्राण पर अब भी  
दूर जिसके दश म अटके हुए हैं आज भी जा भाव मेरे  
तिमिर के माहन-अमघम म लगाते ह विकल फेरे  
जिस प्रतनु क अलक के चहुँ आर

जिस सलानी कामिनो के पलय म बस बुला दते हैं विमुघ तद्रा  
सुला दत ह पिमा सी पिया से गुथ, एक होने की  
पिया क साथ साने की  
सुनहला चाह ।

वहो कविता कल्पना चिर साथ जावन की  
वही अचल परस जिसका वरद पारस-सा  
आर व हा मधु मरे लघु भाव  
जो रहे हैं ज्या अभी मेरी अतार्किक दृष्टि म ।  
सृष्टि म

इसी से तो अभी कोलाहल नहीं खमान  
अभी जस कम का आह्वान  
अरुण की नवजात किरणें द न पायो हो जगत् को ।  
क्षणिक, मीठा अस्पटी यह सुखद वेला  
रात के उन दीघ, कम्पित, भय भरे ऊबे पला से  
है नितान्त विभिन्न ।



## जागते रहो ।

झूठता दिन भीगती सी गाम  
बन्द कर दो काम  
सो विश्राम ।

यह तिमिर की शाल  
ओढ लो वसुधे । न सिमुड गात स यह ला  
जग का बाल ।

बलय की खनवार  
दीप बालो रो मुद्गार्गिन । जग उठ ग द्वार  
बन्दनवार ।

किन्तु साथो ! दख  
हम न सायगे हमारा काय है अबशिष्ट  
अपनी प्रगति का अब भो जरा लख ।  
जागरण चिर जागरण हो है हमारा इष्ट ।

ला क्षितिज के पास—  
वह उठा तारा, अरे वह गल तारा नयन का तारा हमारा  
सबहारा का सहारा  
विजय का विश्वास ।

०

## पथ हीन

कोन-सा पथ है ?

माग म आकुल अधीरातुर बटोही या पुकारा

'कोन सा पथ है ?

'महाजन जिस ओर जायें'—शास्त्र हुकारा

'अतरात्मा ले चले जिस ओर'—बोला गाय पण्डित

'साथ आजा सब-साधारण जनो के'—क्रांति-वाणी ।

पर महाजन माग-गमनोचित न सम्बल है, न रय है,

अतरात्मा अनिश्चय-सशय-ग्रसित,

क्रांति गति-अनुसरण-योग्या है न पद-सामर्थ्य ।

कोन सा पथ है ?

माग म आकुल अधीरातुर बटोही या पुकारा

'कोन-सा पथ है ?'

## पुनश्च

पर नहा कविता अस्त्र नहीं है - न मूयवान न अमूल्य । कविताका अस्त्र मानकर चला हा था ( जागृत रहा ) कि म स्वय अस्त्र धन गया और मरा कविता एसी यत्र लिपि कि उसमें अपन मनका स्पन्द सुनाई हा नहा पता था । आज यह बात कहनम बनी हल्का जौर आसान लगती है पर जिन प्रतिश्रुतिमाकी मायामें पत्कर म इस अगतिका ( या दुगतिका ) प्राप्त हुआ था व इतनी विकट थी और एक बार उस डगरपर दा कदम चल पडनके बाद पाछ गौतनम यथताका एसा विचित्र भाव जगा था कि एक प्रकारसे मरी कविताका खात ही मूल चल । फिर माहस कर किसा तरह उस जुत्सम अपनको अग्न किया रास्तका एक पलियापर बठनर दण्यका नर्वेण किया (मुक्तिमाग) जौर अपनी एक निराग पगडग निकानकर कायके प्रगस्त पथपर आनकी चष्टा करता रहा ( आ अप्रस्तुत मन । ) अब लगता ता है कि वह प्रगस्त पथ लिखाइ पन्न लग गया है और अगर हिम्मतन साथ दिया तो एक दिन उसपर पहुच जाउगा पर भविष्य-कथनम सकोच हाता स्वाभाविक है ।

नहा जानता मरा यह अनभव नितात मरा हा है अथवा अय सम वयसा कवियाका भा ( सप्तक क जयवा सप्तक से भिन्न ) पर मय एसा बातपर कम सताप और हप नहा है कि म कतना भक्त्वर भा रास्तपर आ लगा है जौर चाह इस प्रक्रियाम हा जधड हा गया है जनी मनक उरसाहम काई कामा नही जाया है । वन अगर पूर न द ता साधा रण दण्यका निराग होना स्वाभाविक है पर अपन-आपका सूतन और टूठ हा जानका नियतिस बचानम वणका कितना सतक यत्न करना पडा है यह कमम कम वनस्पति शास्त्राका ता पट्टचानना ही चाहिए ।

२

एस वाच कवि-कम निरतर कतिन हाता कण गया है । तार सप्तक क प्रथम प्रकाशनक समय कित्त अपन इतिहासक सबम अधिक भीषण युद्धमें ग्रस्त था और दण अपनी मक्तिव द्वारपर धरयरा रहा था । जम-जम यद्ध समाप्त हुआ और देणका मक्ति मिग पर जावन एव

जगतका जाटता निरन्तर बनी चली गयी है। आधुनिक कविकों  
 यदि एक ओर विश्व पहली बार एक होता शैवता है तो दूसरी ओर  
 यात्रिक पद्धतिकी जकड़में व्यक्ति अकेला पड़ता जा रहा है। भारतीय  
 कविके लिए एक अतिरिक्त कठिनाई यह है कि जनता-जन आगे-बाकी ही  
 साथ-साथ विभाजक गायत्री भाँटि-भाँटि पढ़ने लग गया है जो नगर और ग्राम-  
 बीच प्राचीन और नवानक बीच और दूरी और विभाजक के बीच खुली हुई  
 है - बल्कि कुछ साइडों ता निरन्तर बढ़ती चली जा रहा है। इन सबपर  
 अपनी सामित मध्यवर्गीय अनुभूतिक चरण वह मधुनामा मनु कम बाध ?  
 और जीवन-यह मनु ? बंध तब-तब उनका कवि-कम कमे चरिताय हो ?

३

और माना यह कठिनाई है कुछ कम ही कि आजके कविके सामने  
 एक और भयकर समस्या गयी हो गयी है उमरा कवि-कम अतिरिक्त  
 कम ही हो सकना है एक मात्र कम नहीं। जो विद्वान नये कविम व्यापक  
 दृष्टि गान अनुभूति और मध्य अमि-व्यक्तिकी माँग करत नहीं करते व  
 इस बातपर एक क्षण भी विचार नहीं करते कि आजकी जीवन-पद्धति  
 कविके अपनी कला-माँजत-मधुनामे और पढ़ने-पुस्तकवा काई अवसर  
 नही देती। एक तो आजके जीवनकी गति पों ही तनी तीव्र हो गयी  
 है कि उमरे साथ-साथ मिथ्या 'तरवारकी घोर पे धावनो हो गया है -  
 नयी परिस्थिति-मधुनामे मूत्र मिथ्या-न मिथ्याते परिस्थिति बंध जाना  
 है - निरपेक्ष-निक जीवनकी माँग कवि और 'अ-व-रि-वा-भ-नही माननी  
 और कविका अधिकांश जीवन कविता-चरणमें नहीं कविताका तयाराके  
 चरणाम निवृत्ति हो जाता है। कम तो आजका साहित्यकार मात्र ही  
 अपना दमनामा दुर्पयाग करनेको बाध्य है पर कवि तो सुखे अधिक  
 कपाति-एग मधुनामे प्राचीन और मध्य साहित्य विधाकी व्यावसायिक  
 मूय मरग कम है। आज कविताका माँग 'घर फूँ' कर ही दिया जा  
 सकना है पर 'घर फूटना' कवीरके समयमें भेजे हो व्यावहारिक विचार-  
 रण है आज ता कपाति नहीं है।

४

मे कभी विदेग नहीं गया पर पढ़-मुनकर जाता है कि कवि-कमका  
 यह दगा-कथल मिथ्यामें ही नही करत भारतमें ही नहीं सब दगामें  
 सब-ए-नी है। जनता-जने जनको निर्गिन तो विद्या है पर एव सामा

ही तक । परन्तु आजका जनसाधारण मनोरजनके लिए ता कविताका माँग करता है पर कवितामें मनोरजन नहीं करता । और इस प्रकार अनुपयोगी कलाकी साधनामें रत कविका जीवन-यापनके लिए तरह-तरहका कलावाञ्छिमा करनी पड़ती है किमके कारण उसकी अनुभूति सामान्य और उसका व्यक्तित्व विभक्त हो जाता है । इस सीमा और विभक्तिको नया कवि भरसक वाणी देता है ( मैं तो आजकी कविताको विभक्ति-युगकी कविता कहता हूँ भक्ति-युगके ढगपर ) पर काव्य उसका भी ममप्र और सम्पूर्ण ही है । जो कविसे महाकाव्यकी अपेक्षा करत है व उसे महाकाव्य की परिस्थितियाँ पानाम सहयोग क्या नहीं दत — यह प्रश्न भर मनम बराबर उठता रहता है ।

५

अतमें एक बात भाषाके सम्बन्धमें । 'तार सप्तक के छायावादी पूर्वजाको एक ऐतिहासिक मुविधा मिली थी कि जिस भाषाम व अपनी अभिव्यक्ति कर रहे थे उस भाषाका वे साथ-ही-साथ विकास और रूपायन भी कर रहे थे । उनके पहले तो कविता अवधी ब्रज भाषा आदि बोलियामें लिखी जाती थी । यही कारण है कि उनके लिए काव्य भाषाका निमाण एक कठिनाई न होकर अन्तर्द्वेषे पद्यपर चलनका गौरवोत्थान बन गया था । यही नहीं जनतात्रिक सिद्धान्त उनके आदर्श तो थे व्यवहार नहीं बन थे और इसी कारण जहाँ संस्कृतका अन्तर्माण्डल उन्हें नवीन अर्थ प्राप्तिके लिए उपलब्ध था वही उसे लोक-मानस तक लानकी उन्हें कोई बाधता न थी ( छायावादो कवितामें लोकोक्तिमाँ और महावरे मरमें मरुद्यानकी ही भाँति मिलते हैं ) पर नये कविको यह मुविधा प्राप्त नहीं है । उसे प्रचलित भाषामें ही नया अर्थ भरना है नयी अभिव्यक्ति का माध्यम पाना है । यही नहीं उनके आस-पास एक विदेशी भाषाका एसा घडलेसे व्यवहार होता है कि सही भावाभिव्यक्तिके लिए उसका शब्दाका सम्पूर्ण बहिष्कार करनेका स्थितिमें वह नहीं है । परिगद्धतावादी उसे चाहे कितना ही क्या नकोसे, दमन्दिन बोल-बालम प्रचलित इन अमरजी शब्दोंके स्थानपर हिन्दीके शब्द बठाना कृत्रिम ही कहा जायेगा और ऐसे शब्द भाव की व्यञ्जना नहीं कर सकेंगे । यथायकी भूमिपर जो काव्य खड़ा है उसका माध्यम यथाय भाषा ही हो सकती है — शब्द-कौशल भाषा नहीं ।

— भारतभूषण अग्रवाल

## आनेवालों से एक सवाल

तुम, जा आज से पूरे सौ वष बाद  
मेरी कविताए पढागे  
तुम, मेरी धरती की नयी पौध के फल  
तुम, जिन के लिए मेरा तन मन खाद बनेगा  
तुम, जस मेरी इन रचनाआ का पन्नागे  
तो तुम्ह कैसा लगगा  
इसका मरे मन म बडा कौतूहल है ।

बचपन म तुम्हें हिटलर और गाँधी की कहानिया  
मुनायी जायेंगी

उम एक व्यक्ति की  
जिमने अपने देशवासिया को मोह की नीद मुला कर  
सारे ससार म आग लगा दी,  
और जस लपटें उसके पास पहुँची  
तो जिसने डर कर आत्महत्या कर ली  
ताकि उनका माह न टूटे  
और फिर उम व्यक्ति की  
जिसन अपने देशवासिया का मान से जगा कर  
सारे ससार को गति का रास्ता प्रताप,  
और जस ममार उसके चरणा पर खुब रहा था  
तस जिमस देशवासी ने ही उसने प्राण ल लिय  
कि कहा मय की प्रतिष्ठा न हा जाय ।  
तुम्हें स्वर्ग म पनाया जायगा  
कि सौ वष पहर

इनसानो ताकतो के दो बड़े राज्य थे  
जो दोनो शान्ति चाहते थे  
और इसीलिए दोनो दिन रात युद्ध की तैयारी म लगे  
रहत थे,

जो दोना संसार को सुखी दरना चाहते थे  
इसीलिए सारे संसार पर कब्जा करने की सोचते थे,  
और यह भी पढाया जायेगा  
कि एक और राज्य था  
जो संसार भर मे शान्ति का मात्र फूँकता रहा  
पर जिसे अपन ही घर म  
भाई भाई के बीच दीवार खड़ी करनी पडी  
जो हर पराधीन देश की मुक्ति मे लगा रहता था  
पर जिसके अपने ही अग पराये बंधन मे जकडे रहे ।  
तुम्हे विश्वविद्यालयो मे बसाया जायगा  
कि इनसान का डर दूर करने के लिए  
सौ साल पहल वैज्ञानिको ने कुछ ऐसे आविष्कार किये  
जिनसे इनसान का डर और भी बढ गया,  
और यह भी  
कि उसने चाद सितारो मे भी पहुँचने के सपने देखे  
जब कि उसके सारे सपने चकनाचूर हो गये थे ।  
और तभी किसी दिन  
किसी प्राचीन काव्य सग्रह मे  
तुम मेरी कविताएँ पढोगे ,  
और उह पढ कर तुम्ह कैसा लगेगा  
यह जानने का मेरे मन म बडा कौतूहल है ।

तुम जो आज से सौ साल बाद मेरी कविताएँ पढोगे  
तुम क्या यह न जान सकोगे

कि सौ साल पहले  
जिन्होंने तमयता से विभोर होकर  
आत्मा के मुक्त आरोहण के  
या समवेत जीवन की जय के गीत गाये  
वे आखें बन्द किये सपनों में डूबे थे ,  
और मैं जिसका स्वर सदा दद से गीला रहा,  
जिसके भराये गले से कुछ चीखें ही निकल सकी,  
मैं सारा बल लगा कर  
आँखें खोलें  
यथाय को देख रहा था ।



## मैं, और मेरा पिटू

देह स जकेला हो कर भी  
म दो हू  
मेर पेट म पिटू है ।

जब म दपतर म  
साहब की घण्टी पर उठना बठता हू  
मरा पिटू  
नदी किनारे बगी बजाता रहता हू ।  
जब मेरी नाटिंग बट कुट कर रि टाइप हाती है  
तत्र साप्ताहिक के मुख पष्ठ पर  
मेरे पिटू की तसवीर छपती है ।  
शाम को जब म  
बस के फुट बाड पर टगा टैगा घर आता हू  
तब मरा पिठ  
चादनी की बाटो म बांह डाल  
मुगल गाडन म टहलता रहता हू ।  
और जब मैं  
बच्चे की दवा के लिए  
आउटडोर बाड की ब्यू म लडा रहता हू  
तब मेरा पिठ  
कवि सम्मेलन क मंच पर पुष्प मालाए पहनता हाना है ।  
इन सरगमिया स तग जा कर  
मैं अपन पिटू स कहता हू

भइ, यह ठीक नहीं  
एक म्यान में दो तलवारें नहीं रहती,  
तो मेरा पिटठू हँस कर कहता है  
पर एक जब मैं दो कलमें तो सभी रखते हैं ।

तब मैं झटला कर आस्तीनें चढा कर  
अपने पिटठू का ललकारता हूँ -  
तो फिर जा, भाग जा, मेरा पिण्ड छाड  
मात्र कलम बन कर रह ।  
और यह सुन कर वह चुपके से  
मरे सामने गीता की कापी रख देता है ।

और जब मैं  
हिम्मत बाँध कर  
आँखें भीच कर, मुट्ठियाँ भीच कर  
तब करता हूँ कि अपनी देह उसीका द दूँगा  
तब मरा पिटठू  
मुख धँसझार कर  
'एफिगिएसी बार' की याद दिला देता है ।

एक दीगनेवाली मरो इस देह म  
दा 'मैं' हूँ ।

एक मैं  
और एक मरा पिटठू ।  
मैं तो, खैर, मामूली-सा कलक हूँ  
पर, मरा पिटठू ?  
वह जोनियस है ।

## दूंगा में

दूंगा में ।

नही नही हिचकूंगा

कि मेरी अकिचनता अनय है

कि में ऐसा हूँ कि मानो हूँ ही नही,

हा, नही हिचकूंगा

कि तुम्ह तप्त कर पाऊ मुझ म सामथ्य कहा

कि अपने को नि स्व कर के भी

तुम्ह बाध नही पाऊगा,

और नही सोचूंगा यह भी

कि आखिर तो तुम मुझे छाड चल जाओगे

जसे नदी का जल

ढूहो को ताड कर

छोड चला जाता है

सोच छोड

हिचक छोड

दूंगा में ।

दता हूँ ।

लो

यह लो

ओ तुम अनजाने अतिथि आज भर के ।

लो यह पराग

जा अपनी अगक्ति में मात्र गुनगुनाहट है

पर जिसे दे कर  
 ये मेरे ओठ समाधि बन जायेंगे,  
 लो यह आग  
 जिसकी चिनगी में जलन तो क्या  
 ताप भी नहीं  
 पर जिसे दे कर  
 यह मेरी अस्थि विभूति बन जायेगी,

ला  
 मैं देता हूँ  
 अपना पराग राग  
 आग यह अपनी  
 जो मैं हूँ,  
 जो मेरा सवस्त्र है  
 ( पर जो नगण्य है )  
 चेहिचक देता हूँ  
 मुट्टी पर मुट्टी भर अपने को रीता कर देता हूँ—  
 लो तुम  
 ओ अतिथि !  
 यह सेवा स्वीकार करो  
 मूल कर कि इससे तुम्हारा काम नहीं चलने का ।

देता हूँ  
 क्याकि तुम मेरे द्वार आये हो  
 और मेरे पास है देने का अपनापन,  
 देता हूँ  
 क्याकि मैं जानता हूँ  
 कि तुम मुँह-अँधेरे में  
 इस गली के घर घर के द्वार पर

दस्तक दे-दे कर थक गये हो—

भीतर थी चहल पहल राग रग गज समाराह की  
पर किसी ने सुनी नहीं तुम्हारी वह खटखटाहट  
क्याकि सत्र ने सोचा कि तुम ता भित्तारी हा  
दीन हीन याचक

परोपजीवी,

पर म पहचानता हूँ

कि तुम अतिथि हो

तिथि से परे हो

इतिहास हो ।

हूँगा मैं ।



गिरिजाकुमार माथुर



[ माधुर, गिरिजाकुमार जन्म १९१८ में मध्यप्रान्तके एक कस्बमें हुआ। लगनऊ विश्वविद्यालयसे अगरेजी साहित्यमें एम० ए० तथा एल-एल० बी० पास किया। कुछ समय तक वकालत की उसने बाद नयी लिलाम सन्नेरियेटमें काम किया अब आल इण्डिया रडियामें है।

कविताके अतिरिक्त एकाकी नाटक आलाचना ओंपरा तथा गान्धीय विषया पर लिखत रहत है। अय कलाआमें संगीतका विशेष अध्ययन किया है। मन्दार नामका एक कविता-संग्रह प्रकाशित हा चुका है ]

१९४३—

'मजोर, 'नाग और निमाण धूपके धान गिलापख चमकाठ आदि और कविता संग्रह प्रकाशित हा चुका है और एक खण्ड काय 'पृथ्वी कल्प और एक कविता-संग्रह अमिदका 'यया' प्रकाशित होनेवाला है। बाचमें आकाशवाणी छाडकर सयुक्त राष्ट्र रडियामें अमराना चल गय है जहाँ दो बय रहे अब फिर आकाशवाणी में अधिकारी है।



## वक्तव्य

विषय और टेकनीक—कविताम विषयम अधिक टेकनीकपर ध्यान दिया है। विषयकी मौलिकताका पनापाना हात हुए भी मरा विवाम है कि टेकनीकके अभावम कविता अधूरी रह जाता है। म्मा कारण चित्रको अधिक स्पष्ट करनके लिए म वातावरणके रग उसमें भरता रहा है। कही कही केवल वातावरणके चित्रणम हा विषय इगिन किया है। जम कुनुव के खण्हर अथवा रक्कर जाती हुई रान नामक कविताआमें केवल वहाका वातावरण चित्रित किया है। प्रत्यक कवितामें प्रयम उसका आधार भूमि निमाण करना आवश्यक समपता है जमे रडियमका छाया व्दारकी दोपहरा अथवा विजय-ग्मा नामक कविताआके प्रयम बट है। वातावरण चित्रणके डिटल में मन रगाका आधार विगप रूपम रखा है किन्तु म चित्रको सदा हल्क रगाकी छांहाक आवरणमें लिपटा पसद करता है। क्याकि यथाय चित्रके सभा डिटल म कलाकी दूरस दसता रहा है। मरा यह विवाम है कि जयधिक गहर रगाका प्रयोग कगम प्राचानता ( मडोवल टट ) का छातक है। क्लासिकल विषयापर गम्भीर गली ( ग्रण्ड स्पान्ल ) म लिखी कविताआम मन गहर रग प्राची नता लानके लिए ही रक्क है। यहाँ मन आधारभूमि विगाल्काय कर दा है और डिटल कम। डिटल मन रोमानी कविताआम ही अधिक भर है। इसक अतिरिक्त म चित्रवलाकी तान दूरियाँ चित्रके पणत्व ( राउण्ण अप ) क लिए यत्र-तत्र लाया है।

भाषा और यजना—रामाना कविताआम मन छोटी और माठा ध्वनिवाल बाल्चाक गद प्रयक्त किया है। रामानी कविताए म हिन्दुस्ताना भाषाम हा लिखना पसद करता है। क्लासिकल कविताआम आय-गण गनक लिए बडा लम्बा और गम्भीर ध्वनिवाऽ गद रख है। अभि-यजनात्मक गद विगाम वातावरणक रूप भावक अनकूठ नय बनाय है—जम पतग नभ मिमग किरन आदिम छाँहें घूमन स्वर आदि। क्याकि म यजनाका वातावरणक लघ चित्र अथवा प्रताकका रूप द दना है। कहीं-कहाँ नय गद वातावरणका नि भाव लकर बनाय है जम

सूनसान, राडरा आदि । उदाहरणाय 'सूनसान' गच्छ लीजिए । 'सूनसान', 'सूनापन, सुनसान सभा गच्छ उस ध्वनिभावक' साथ निबल प्रस्तात हुए । 'सून' में एक ख्यालपल ह, 'सूनापन' में दा स्वर ध्वनियाकी तडीक बाद हा अतकी दा यजन ध्वनियाँ गतिका समाप्त कर देता ह राक देती ह । 'सूनसान' सवम निबल ह, कयाकि इनमें कवल एक स्वर ध्वनि ह, और आरम्भका दा यजन ध्वनियामे गच्छ निगति ह । 'सूनसान' में ऊँ की ध्वनि लम्बाई और दूरी यजन करती ह आ की ध्वनि विस्तार । बीचमें न का ध्वनि सनसनाहट और गहराई ब्यक्त करती ह । इस प्रकार सूनसान गच्छका ध्वनि भाव आ ऊँ हा जाता ह जा गहर सुनसानका यथाथ रूप ह । इसा प्रकार अय गच्छ भी ह । विस्तार क कारण प्रत्यक नय गच्छका अय नहा द सकता ।

छन्द तथा ध्वनि विधान—कवितामें मुक्तछन्द हा पसद करता ह । मुक्तछन्दमें अधिकतर मन विरामात्त ( एण्ड स्टॉप ) पक्कियाँ नहीं रखा । धारावाहिक ( रन ऑन ) हो रखी ह । आगत पक्किक आरम्भम विगत पक्किकी ध्वनि मम सगीत उत्पन्न करनके लिए वत्तमान रहन दा ह । कयाकि बिना इसक ध्वनि-सामग्रस्प ( मिम्पयन्डि वाइत्रेगन ) उत्पन्न नहा हा पाता । इसी कारण म मुक्तछन्दम सगीत प्रधान गीत मम्भव कर सता ह जिहें गीत समय तुककी आवश्यकता प्रतात हा नहा हाता । जम रडियमका छाया वमत-पचमा आदि ह ।

मुक्तछन्दका मन सम्पूर्ण विधान रचा ह । मुक्तछन्दका दो भागामें विभक्त किया ह वर्णिक और मात्रिक तथा इनक रूपातर । वर्णिकमें म कवित्तक विरामाका उनके रूपातर-महित लकर चला ह । यह आवश्यक नहा रगा कि कवित्तक पूण विरामापर हा पक्कि समाप्त हा किन्तु अय विराम भी गूढ मान ह जबतक क अनुच्चरित ( अन-एकमण्ड ) वर्णपर समाप्त न हाकर उच्चरित ( एकमण्ड ) पर समाप्त हात हा । इस भाँति कवित्तक विरामाको लकर कितन हा प्रकारका मुक्तछन्द-पक्कियाँ लिपिन की ह । सबक विरामापर स्थित एक नये प्रकारका बन्त सगीत मय मुक्तछन्द लिया ह ( आज ह कमर रंग रग ) । एन कविताम एक ही प्रकारका मुक्तछन्द प्रयुक्त हाता आवश्यक समयता ह । यन् उच्चरित वर्ण-विभास ( सिन्बल ) सपक्कि आरम्भ हूद हो ता समस्त पक्कियाँ उच्चरितन हा प्रारम्भ हागो चाहिए । विरामात्त पक्कियामें यह नियम अनिवाय कर लिया ह । धारावाहिना पक्कियामें भा प्रथम पक्कित्त

अथ विराम त्रितीय पञ्चम स्वनवा नियम ग्गा ह । पञ्चम्यां विरामाङ्गी ध्वनि-मात्राए पूणत सम एव गड्ड हाना अयन्त आवय्यत समानता ह । इन नियमां विन्द्य लिंगा गया मवनछन् अगड्ड मानता ह ।

ध्वनि विधानम मर प्रयोग मरूपन स्वर ध्वनियाके ह । व्यजन ध्वनियास उत्पादित सगीतवा म कविताम सगीत नहा मानता । प्रत्यत रीति-कालीन स्ति समझता ह । छायावाणी कविधाम स्ना कारण म कई सगीत नही देखता क्याकि उनका सगीत व्यजन ध्वनियामे निर्मित ह । और व्यजन ध्वनियाका सगात बाह्य अस्यापी एव मृत ह । वह आकार वा सगीत ह गदकी जात्माका सगात नहा । गन्धी आत्मा स्वर ध्वनि ह इसी कारण उसपर अवलम्बित सगीत आंतरिक गम्भार और स्याया ह । वह आकांग तत्त्वका सगीत ह । वातावरण निर्माणम मन इसीको सबसे अधिक सहायता ली ह । मवनछन्दके अन्त मगीतम इन्ही ध्वनियाका गजे बुनी ह । इसी नियमको लेकर मन स्वर ध्वनियाका मल्याकन किया ह । मन छोहा स्वराव सम्पूर्ण प्रभावाको लेकर उनका निश्चित रूप एव आकार निर्धारित किया ह । आ ध्वनिका रूप ह विस्तार इ ध्वनिका रूप ह आनत ऊचाइ ऊ ध्वनिम दूरा ए ध्वनिम ऊर्ध्वगति आ ध्वनिम वस्तुका ग्राम तथा भीम प्रवाह और ऊ म गहराई और गाम्भीय ह । इस मूल्याकनके वरपर मन विभिन्न वातावरण निर्माण किय ह । जहाँ जिस वस्तुका इंगित करना होता ह वहा उस ध्वनिका उतना ही प्रयाग ह । इस प्रकार न केवल वणनसे ही दश्य स्पष्ट किया ह किन्तु ध्वनियासे भी उनका चित्र लीचा ह । इन स्वराकी गविन, स्वरूप और रग तथा उनका प्रभाव गण स्थापित किया ह । प्रत्यक स्वरके स्वरूपपर कविताए लिखी ह । क्याकि मरा विश्वास ह कि स्वर ध्वनिया आकांग तत्त्वक विभिन्न रूपान्तर ह ।

—गिरिजाकुमार माथुर

## आज हैं केसर रंग रंगे वन

आज हैं केसर रंग रंगे वन  
रजित शाम भी फागुन की खिली पीली फलो से  
केसर के वसना म छिपा तन  
सोने की छाह सा  
बोलती आखो म  
पहिल वसंत के फूल का रंग है ।  
गोरे बपोला पै हील से आ जाती  
पहिले ही पहिले के  
रंगीन चुम्बन की-सी ललाई ।  
आज हैं केसर रंग रंगे  
गृह, द्वार, नगर, वन  
जिनके विभिन्न रंगा म है रंग गया  
पूनों की चदन चाँदनी ।

जीवन म फिर लोटी मिठास है  
गीत की आखिरी मोठी लकोर-सी  
प्यार भी डूबेगा गोरी-सी वाँहा म  
भोठा म, आँखा म  
फूलो म डूने जया  
फूल की रेसमी रेसमी छाह ।  
आज हैं केसर रंग रंगे वन ।



## रुक कर जाती हुई रात

रुक कर जाती हुई रात का  
अन्तिम छाहा भरा प्रहर है  
श्वेत धुएँ से पतल नभ म  
दूर झावरे पडे हुए सोने-से तारे  
जगी हुई भारी पलका से पहरा देत  
नील भरी मन्दी बयार चलतो है  
वर्षा भोगा नगर  
भार के सपने देख रहा है अब भा  
लम्बे-लम्बे धुँधल राजपथो म  
निशि भर जलो रोशनी की  
कुछ थकी उदासी मँडराती है ।  
पानी रगे हुए घँगलो के वातायन से  
थकी हुई रगीनी म डूबा प्रकार अब भो दिख जाता  
रेशम पदों, सेजो, निद्रा भरे बघना की छाया सा ।  
बुझी रात का अभी अखीरी पहर नहीं उतरा है,  
दूरी के रेखा ऊहा से पेडा ऊपर  
ठण्डा-ठण्डा आद ठिठक कर मन्दा होता  
नभ की लम्बी साया दूरी तक पडती है ।



## चूड़ी का टुकड़ा—

आज अचानक सूनी सी साध्या मे  
जत्र में या ही मैले कपडे देख रहा था  
किसी काम म जो वहलाने  
एक सितक के कुर्ते की सिलवट म लिपटा  
गिरा रेशमी चूड़ी का छोटा सा टुकड़ा  
उन गोरी कलाइया मे जो तुम पहिने था  
रग भरी उस मिलन रात म ।  
में वैसा का वैसा ही रह गया सोचता  
पिछली बातें  
दूज कोर से उम टुकडे पर  
तिरने लगी तुम्हारी सब लज्जित तसवीरें  
सेज सुनहली  
वसे हुए बघन म चूड़ी का क्षर जाना ।  
निमल गयी सपने जैसी व रातें  
याद दिलाने रहा सुहाग भरा यह टुकड़ा ।

## रेडियम की छाया—

सूनी जाघो रात  
चाद-कटारे की सिबुडी कारा से  
मद चादनी पोता लम्बा कुहरा  
सिमट लिपट कर ।

दूर दूर के छाह भर मुनसान पया म  
चलने की आहट ओल सो जमी पडी थी  
भूरे पेडा का कम्पन भी ठिठुर गया था  
कभी कभी बस  
पतझर का सूखा पत्ता गिर कर उड जाता  
मरे स्वरो स खर खर करता ।

प्रथम मिलन के उस ठण्ड कमरे म  
छत के वातायन म  
नीद भरी मदो मो एक किरन भी  
थक कर लौट-लौट जाती थी  
आलस भरे अघेरे म  
दो काली आखा सो चमकीली  
एक रेडियम घडी सुप्त कोने म चलती  
सूनेपन क हल्के स्वर सो ।  
उही रेडियम क अका की लघु छाया पर  
दो छाहो का वह चुपचाप मिलन था  
उमो रेडियम की हत्की छाया म  
चुपके का वह रका हुआ चुम्बन अकित था

कमरे की सारी छाहों के हल्के स्वर-सा  
पडती थी जो एक दूसरे में मिल-गुँथकर ।  
सूनी सी उस आधी रात ।



## कुतुब के खडहर—

समल की गरमोली हत्की रई समान  
जाहा की धूप तिलो नाल आसमान म  
याही-पुरमुटा स उठे लम्बे मदान म ।  
रुखे पतझर भरे जगल के टीला पर  
बाप बर चलती समीर हेमत की  
लम्बी लहर सी ।

दूरी के ठिठुरे-स भूरे भूरे पडा पर  
ठण्ड बबूल बना धूल छा जाती थी—  
रतोल परो से धीरे ही दाव बर  
काई से काल पडे धवस राजमहलो को  
पत्थर के ढर बने मी दर मजारो को  
जिन से अब रोज साथ कुहरा निकलता था  
प्यासे सपना सी मँडराती हुई छाह सा ।  
गू जता था सूनसान—  
ऊजड खण्डरो म  
गिरत थे पत्ते,  
वन पछी नही बोलत थे,  
नाल की धार किनारे से लगी जाती थी ।





## क्वॉर की दोपहरी

क्वॉर की सूनी दुपहरी,  
श्वेत गरमीले रूए-स बादलो म,  
तेज सूरज निकलना फिर डूब जाता ।  
घरा म सुनसान आलस ऊषता है  
थकी राह ठहर कर विश्राम करती ,  
दूर सूनी गली के उस छोर पर से  
नीम नीचे खेलत कुछ बालकों की  
मिली-सी आवाज आती

खिन्न कमरे की उदासी बढ रही है  
दूर के आत स्वरा स ।  
दूर होता जा रहा हू म स्वय ही—  
पास की दीवाल पर क चिन सारे  
गूँथ द्वारा पर पडे रगीन पदें  
वायु की सासा भरी एकांत खिडकी  
वह अक्ली सी घडी  
वह दीप ठण्डा  
और राता जगा वह सूना पलग भी  
दूर हाता जा रहा है दूर कितना ।  
लग सका है कुछ न अपना  
खिदगी भर दूर ही रहना पडा है,  
प्यार क सारे जगत स ।

थक रही है क्वार को सूनी दुपहरा,  
श्वेत हके बादलों म सूय टया  
नीम-नीचे बालका का स्वर मिला सा छा रहा है  
धूल पैरा मे हवा म उड रही है ।  
बालका सा खेत्ता मैं जिदगी म  
किन्तु साथी दूर पर जिछुडा हमार ।



## भीगा दिन

भीगा दिन पश्चिमी तटों में उतर चुका है,  
बालू-ढकी रात आती है  
धूल भरी दीपक की लौ पर मन्दे पग धर ।  
गोली राह धीरे धीरे सूनी होती  
जिन पर बोझल पहिया के लम्बे निशान हैं  
माथे पर की सोच भरी रेखाएं जैसे ।  
पानी रंगी दिवाला पर मूने राही की छाया पड़नी  
पैग के धीमे स्वर मर जात हैं  
अनजानी उदास दूरी में ।

सील भरी फुहार-डूबी चलती पुरवाई  
बिछुड़न की रातों को ठण्डो ठण्डो करती  
साथे सोये लुटे हुए खाली कमरे में  
गज रही पिठल रंगीन मिलन की याद  
नीच भरे आलिंगन में चूड़ी की खिसलन  
मीठ अघरा की व धीमी धीमी बातें ।

ओर भी ठण्डी बरसात अकेली जाती  
दूर-दूर तक भोगी रात घनी होती है  
पथ की म्लान लालटेना पर  
पानी की बूँदें लम्बी लकीर बन चू चलनी ह  
जिनके बोझल उजियाल क आस-पास  
मिमट मिमट कर मूनापन है गहरा पड़ता,

—दूर देश का आसू घुला उदास वह मुखड़ा—  
याद भरा मन खो जाता है  
चलने की दूरी तक जाती हुई यकी आहट म मिल कर ।



## एसोसिएशन

कुछ सुनसान दिनों को,  
और चादनी से ठण्डी-ठण्डी रातों को  
पना की दुनिया से भी हम दूर हुए थे  
आज तुम्हारा सूना-सा सदेग मिला है,  
प्यार दूर का ।  
मान गव के दो दिन अभी जिताये मैंने  
गीतों के उस मेल में ।  
मेल मुझ ल कर उड़ती जाती थी,  
रग भरे पानी से चलते उन डिब्बा की एक कोच पर,  
सनसन-सनसन वायु वग से  
घनी वायु नदिया से छन म पार उतर कर  
पीछे छोड़ नगर ग्रामों को  
कितनी ही पवन माला की घूमो में से ।  
एक सीध में वनी खिड़किया में से हो कर  
कमरों का विद्युत् प्रकाश बाहर पड़ता था  
तेजी से चलती लम्बी लकीर बन-बन कर  
मून-मून करते उन पीछे उड़ते मदाना में,  
हल्के चाद भरे जा अनजानी दूरी तक  
बन-फूला की माधो सी सुगंध में टूके ।  
लकिन मैं जाने कितने पीछे चलता था,  
एक बरस पहिल की इन ठण्डी आखा में—  
इसी तरह का वह रंगीन दूमरा दर्जा  
वायु-वेग से चलता जाता ।

जब दूरी तक फैले-फैले,  
वन, पर्वत, मैदान उतर कर,  
लम्बी, लम्बी सी तेजी से—  
तुम उस रेशम-सज-बोच पर,  
दख रही उड़ती पहाडिया खिडकी म से  
एक हाथ पर चिबुक टिकामे ,  
साथ-साथ ही,  
वह पहले पियार की यात्रा ।  
आज दूर हा,  
प्राणा स, तन से पीडित हो—  
मेरी सूना-सी आँखें हैं,  
सूना सा मेरा घर, आगन ।  
चहल पहल है नगर बीच,  
दूर तुम्हारे दश यही सत्र होता होगा—  
यही धूप, उजली कुआर की यही धूप भी  
पछी, वायु, यहा नभ, वादल ।  
—मून-मून करत मदानो म-स हो कर,  
मेल जायगी निज लम्बी-लम्बी तेजी स  
प्रतिदिन की ही भाँति आज भी ।



## विजय दशमी

आसमान की आदिम छायाआ के नीचे  
 दक्षिण का वह महासिन्धु अब भी टकराता  
 सेतुघ की श्यामल बहती चट्टानों से ।  
 आखा में वह अंतरीप के मंदिर की चोटी उठती है,  
 जिस पर रोज साझा छा जात  
 युग युग रजित लाल सुनहल पील बादल  
 एक पुरातन तूफानी सी याद दिला कर,  
 जब, अविलम्ब अग्नि शर चाप उठात ही म  
 नभ चुम्बो काल पवत सा ज्वार मिटा था ।  
 सस्कृतियाँ पर सस्कृतियाँ के महल मिट गये,  
 लौह नीव पर खड़े हुए गढ दुग मिनार  
 दद स्तम्भ आधार भग हो  
 गिरे विभिन्न निशान गास्ति के केतन डूबे ।  
 महाकाल के भारी पावों से न मिट सके,  
 चित्रकूट त्रिपिन्धवा नालगिरी के जगल,  
 पंचवटी की गुँथी हुई अलसायी छाह  
 वात्मीकि के मत्युजय स्वर ल अपने पर  
 सरयू गादावरी नील कृष्णा की धारा ।  
 प्रत भर इस यज्ञकाल में  
 जाज कोटि युग को दूरी से यादें आती  
 गम्भु चाप से अविटित इतिहास पुराने  
 और वज्र विद्युत् से पूरित अग्नि-नयन वे  
 जिनमें भस्म हुए लका-से पाप हजारा ।